अजाने देशों में



विमला कपूर

ा म

लेखिका :—

विमला कपूर

मूल्य २)

१६५५ सजिल्द २।)

प्रकाशक :
साधना प्रकाशन
बगिया मनीराम, कानपुर

मुद्रक :
विश्वेश्वरनाथ कपूर
साधना प्रेस, कानपुर।

समर्पण

जिनका स्नेह अन्त: सलिल की भाँति
जीवन में सतत् प्रेरणा का स्रोत रहा
जिनके उदार हृदय ने हमारी समस्त
भूलों को सदैव दुहराया और
जिनके उत्साहपूर्ण अप्रकट सहयोग
ने हमें योरोप-भ्रमण का सुअवसर
प्रदान किया, उन्हीं श्रद्धेय
बाबू जी के श्री चरणों में
यात्रा का यह वृत्तान्त
सादर समर्पित

प्राक्कथन

विमला जी की पुस्तक "अजाने देशों में" बड़े सरल और रोचक ढंग से लिखी गई है। यद्यपि वह अपनी इस पुस्तक द्वारा हिन्दी-साहित्य में पहिले-पहिल उतर रही हैं, पर उनकी लेखनी अनभ्यस्त-सी नहीं मालूम होती। उनका वर्णन अनजाने देशों की अनजानी चीजों को मूर्त रूप में ला खड़ा करता है। उसके साथ विशेषता यह है, कि वह अपनी बातों को जैसे ढंग से कहती हैं, वैसे एक महिला ही कह सकती है। हमारी भाषा में महिलाओं द्वारा रचित यात्रा-पुस्तकों का अभाव है। विमला जी का यह ग्रन्थ इस दृष्टि से भी अपना विशेष महत्व रखता है। अपने वक्तव्य को उन्होंने एक बालिका के नाम संबोधित पत्रों के रूप में लिखा है, जिसके कारण उन्हें और भी सरल तथा स्पष्ट शैली को अपनाना पड़ा, जो पुस्तक के पाठकों के लिये भी उपयोगी सिद्ध होगा।

जहाजी यात्रा का उनका वर्णन बड़ा ही सुन्दर है, और वहाँ के अपने नवपरिचितों के बारे में कितनी ही जगह उनका वर्णन कविता का रूप ले लेता है। सबसे बड़ी बात यह है कि अनजाने देशों में कहीं उन्होंने अनात्मीयता का भाव नहीं अनुभव किया। वस्तुतः सभी जगह सत्य-शिव-सुन्दर है, यदि आदमी स्वयं उसे उलटा समझने की कोशिश न करे।

विमला जी की चमत्कारिणी लेखनी को देख कर हम यही कामना करेंगे, कि उस में आलस्य न आने पावे।

मसूरी २२–४–५५ —राहुल सांकृत्यायन

भूमिका

संयोगवश घटी घटनायें जीवन में प्रायः विशेष महत्व रखती हैं। हमारी अकस्मात योरोप यात्रा भी इसी प्रकार का एक संयोग था। जाने की न तयारी थी, न कोई पूर्व योजना ही। यदाकदा भाई रामकुमार के पेरिस से पत्र आया करते थे जिनमें योरोप के हालचाल और युवक सम्मेलन की चर्चायें तथा अपनी ओर से यात्रा सम्बन्धी सहयोग के समस्त आश्वासन रहते थे।

वैयक्तिक तथा अन्य असुविधाओं एवं कठिनाइयों के कारण हमारे लिए विदेश यात्रा अत्यधिक दुष्कर थी और फिर लाल देशों की यात्रा तो उन दिनों केवल कल्पना की ही वस्तु थी, किन्तु संयोग की बात, साहस सफल हुआ।

और यात्रा की भाँति यह पुस्तक भी एक संयोग ही है। वाणी द्वारा परस्पर आदान-प्रदान के अभाव में भावना ने पत्रों को आत्मतुष्टि के लिए माध्यम बनाया। सुन्दर-सुन्दर देशों के अपार जन-समूहों को आत्मीयता की भुजायें फैलाते देखा, बर्लिन के कोने-कोने से शांति का गगन भेदी उद्घोष सुना। फलतः जनवादी देशों की विराट योजनाओं को और अपने प्रति उनके स्नेह की उमड़ती हुई सच्ची भावनाओं के सुख को मेरा हृदय अकेले ही अनुभव न कर सका, वह स्वजनों को बताने के लिए मचल उठा। उन देशों का साहस, निष्ठा एवं कर्तव्यपूर्ण जीवन, विकास के विभिन्न स्वरूप तथा नव-निर्माण की मनोरम एवं विश्वासपूर्ण कल्पनायें हमारे हृदय में एक जिज्ञासा की सृष्टि करने लगतीं। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का पावन स्रोत हमारी अन्तश्चेतना को बल प्रदान करता हुआ महान भारत की कल्पना में हमें तन्मय कर देता। ऐसे ही क्षणों में जो लिख जाती उसे यहाँ भेजती जाती। वहाँ से लिखी गई इन पंक्तियों को सर्वप्रथम 'रामराज्य' सम्पादक श्री रामनाथ गुप्त ने अपने पत्र में स्थान दिया। सम्भवतः नई चीज होने के कारण पाठकों को यह सामग्री रुचिकर प्रतीत हुई। प्रोफेसर श्रीनारायण अग्निहोत्री एवं

बन्धुवर डा० प्रेमनारायण शुक्ल के सहयोग एवं प्रोत्साहन से यह क्रम चलता रहा। विदेश से भेजे गये मेरे कतिपय लेखों को श्री विश्वेश्वर जी तथा श्री रामकुमार बंसल विभिन्न भारतीय पत्रों—कर्मवीर, सिटीज़न, हंस, धर्मयुग, विश्वमित्र, बालभारती, सुमित्रा आदि—में भेजते रहे। इन पत्रों ने उन्हें प्रकाशित कर मेरा उत्साह-वर्धन किया। इस प्रकार धीरे-धीरे यात्रा संबंधी सामग्री एकत्र होती गई। दादा, श्री माखन लाल जी चतुर्वेदी, ने समस्त सामग्री को पुस्तक रूप में लाने का आदेश दिया। पर उनका दुलार मुझे ढीठ बनाये रहा। भाई रमेश एवं अन्य मित्रों ने कई बार विदेशों के अनुभवों को पुस्तक के रूप में लाने के लिए कहा, पर मेरी झिझक को मेरे आलस्य का साथ मिला और एक एक वर्ष करके कई वर्ष निकल गये। अंततः आदरणीय श्री राहुल जी की डाट फटकार के कारण यह कार्य और अधिक टल न रुका। पुस्तक का छपना प्रारंभ हो गया। इस अवसर पर भाई प्रेम जी का मूल्यवान सहयोग पुनः प्राप्त हुआ।

साधना प्रेस ने पुस्तक के छापने में मेरे आलस्य के कारण जो सहयोग एवं अत्यधिक धैर्यपूर्वक सुविधा प्रदान की है वह उसकी आत्मीयता का ही परिचायक है। अपने के प्रति असावधानी का हो जाना स्वाभाविक ही है, कदाचित इसीलिए पुस्तक में प्रूफ संबंधी अनेक अशुद्धियाँ रह गई हैं।

लड़खड़ाती हुई भाषा में जैसे बन पड़ा है वैसे विदेश के अनुभवों को पुस्तक का रूप प्रदान कर गुरुजनों एवं स्वजनों की आज्ञा-पालन का एक अभिनय-सा हो गया है। पता नहीं इससे उन्हें तथा अन्य पाठकों को कैसा सन्तोष प्राप्त होगा। वस्तुस्थिति तो यह है कि यदि मुझे इतनी अधिक अपनत्वपूर्ण प्रेरणा एवं सहयोग न प्राप्त हुआ होता तो वर्षों उपरांत नए देशों के बिखरे भाव धूमिल हो सूर्यास्त की भाँति अतीत के झुरमुट में तिरोहित हो जाते और स्मृतियाँ मात्र ही अवशेष रह जातीं।

—विमला कपूर

विषय-सूची

३० जून १९५१

प्रिय प्रभा,

मैं अपने वादे के अनुसार तुम्हें जहाज में से ही पत्र लिख रही हूं। मुझे मालूम है कि तुम जहाज और इसकी जिन्दगी के बारे में जानने के लिए कितना उत्सुक हो। प्रयत्न करूँगी कि तुम्हारी इस उत्सुकता को अधिक से अधिक शान्त कर सकूँ। पत्र जिस-जिस बन्दरगाह से भी भेज सकूँगी, भेजती रहूँगी जिससे तुम्हें शिकायत करने का मौका न मिले।

हाँ, तो आखिर अनेक बाधाओं के बावजूद भी हम "बर्लिन सम्मेलन" के लिए चल ही दिए। अपने सामने उमड़ते हुए अनन्त सागर के बीच खड़े "आस्ट्रेलिया" जहाज के अन्दर आकर ही हमने अनुभव किया कि हमारी यह चिर आकांक्षा आज पूरी होने जा रही है। पासपोर्ट, वीजा और सीट आदि मिलने में कितने झंझट उठाने पड़े इसका अनुभव इसके पहले कभी नहीं किया था। बम्बई तक आ जाने पर भी आखिरी क्षण तक 'जायेंगे या नहीं जायेंगे' की अनिश्चित दुनियाँ में डोलता हुआ मन कभी-कभी तो मायूसी अवस्था में पहुँच नियति की आराधना करने लगता था। पासपोर्ट मिला तो वीजा नहीं और वीजा मिला तो किसी जहाज में छः महीने तक सीट खाली नहीं। बहुत कोशिश करने पर भी जब सीट मिलने के कोई आसार नजर नहीं आये तब योरोप यात्रा की सभी रंगीन उम्मीदों को छोड़ निराश से होकर बैठ गये। सोचने लगे नाहक ही बैठे बिठाये इतनी परेशानियाँ मोल लीं। क्षण भर के लिए वायुयान में उड़ने की कल्पना की पर एक सीट का ढ़ाई हजार किराया सुनकर इस विषय पर सोचने की भी हिम्मत न हुई। वायुयान और जहाज के किराये में जमीन आसमान

का अन्तर था। भाग्य ने फिर पल्टा खाया। केवल सात दिन पहले अचानक सीट खाली मिल जाने का तार आ पहुँचा। अब तो घबराहट के मारे हाथ पैर फूलने लगे। इतने कम समय में कैसे तैयारी करें, कितना सामान ले जायँ, क्या-क्या ले जायँ, आदि, बातें कुछ भी समझ में नहीं आ रहा थीं। इसी बीच अपने सब मित्रों और सभी सम्बन्धियों से मिलना, जहाज के नियमों के अनुकूल चेचक, कालरा और टाइफाइड के टीके लगवाने और डाक्टर का सार्टीफिकेट लेना आदि सभी काम करने थे। इन सात दिनों में हमारी तैयारी का अच्छा खासा नाटक-सा घर में हो गया था। चेचक और टाइफाइड के टीकों ने भी हम पर अपना खूब जोर दिखाया। बाँह में दर्द और तीन दिन तक हरारत रही। खाना भी कुछ नहीं मिला। पर खुशी के भावावेष में कष्टों को सहन करने की क्षमता भी बढ़ जाती है। योरोप जाने की बात न होती तो क्या मजाल कि इस दर्द और हरारत में हम तिनका भी हिलाते। पर उस समय तैयारी करने का कुछ ऐसा जोश था कि खाना न खाने पर भी सैकड़ों ऊपर-नीचे के चक्कर कर डाले। सारी तैयारी बहुत ही जल्दी और घबराहट में हुई। हमारे कुछ मित्रों को तो विश्वास ही न होता था। हमारे जाने की सूचना सुन कर उन्होंने हँसी में टालते हुए कहा था कि हमारे तो ऐसे हवाई किले रोज बनते और रोज बिगड़ते हैं। गत वर्ष दक्षिण भारत की यात्रा का इरादा अब तक पूरा न हो पाया यद्यपि तैयारी में कोई कसर बाकी न रह गई थी। कुछ विद्वान व्यक्तियों की राय थी कि बिना फ्रेंच भाषा का ज्ञान हुये लन्दन के आगे जाना उचित नहीं क्योंकि ज्यादातर कॉन्टिनेन्ट में फ्रेंच भाषा ही प्रचलित है, अंग्रेजी तो बहुत कम लोग जानते हैं। हमारे यहाँ की कुछ बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ भी हमारी इस विदेश यात्रा के पक्ष में न थीं क्योंकि उनके लिए विलायत अब भी अपवित्र स्थान है पर जब हमने उनसे निरामिष रहने का वादा किया तो उनका विरोध कम हो गया। इस प्रकार सात दिन की निरंतर तैयारी के बाद हम कानपुर से विदा ले बम्बई आ पहुँचे।

"सी० सी० आस्ट्रेलिया" जहाज जो पहली जून को आस्ट्रेलिया से चला था सीलोन होता हुआ तेईस जून को शाम को बम्बई की विशाल बन्दरगाह पर आकर ठहरा। इसी जहाज में हमारी सीट रिजर्व थी। जहाज को देखने की उत्सुकता इतनी अधिक थी कि उसी संध्या को टैक्सी करके "बैलार्ड पिअर" पहुँचे और सरसरी तौर से सारे जहाज का निरीक्षण किया। अपना केबिन, शौचालय तथा खाने का कमरा आदि भी देखा। हमारा जहाज एक दिन आठ घंटे बम्बई में रुका। "बर्लिन सम्मेलन" में जाने वाले तिरानवे आस्ट्रेलियन प्रतिनिधि भी उसी जहाज में यात्रा कर रहे थे अतः बम्बई की पीस कमेटी ने उन आस्ट्रेलियन प्रतिनिधियों का बहुत सुन्दर स्वागत किया। बम्बई के कामा हॉल में इनके स्वागतार्थ एक मीटिंग हुई और अनेक प्रकार के सांस्कृतिक प्रोग्राम उपस्थित किए गए। अगले दिन बम्बई की बन्दरगाह पर भी अनेक युवक और युवतियें गले में शान्ति प्रतीक कबूतरों की तस्वीरें लटकाये और शान्ति के गीत गाते हुए इन आस्ट्रेलियन प्रतिनिधियों को विदा देने के लिए आए। बहुत सुन्दर दृश्य था इस विदाई का। संध्या के झुटपुटे में जब भगवान भास्कर अस्ताचल की ओर प्रयाण कर रहे थे हम आस्ट्रेलियन प्रतिनिधियों के साथ ऊपर की डेक पर से नीचे खड़े अपने साथियों से विदा ले रहे थे। जहाज के चलने का समय तीव्र गति से हमारी ओर बढ़ कर हमारे दिलों को बोझिल-सा बना रहा था। फूलों के गुच्छे और कागज के रंग बिरंगे लम्बे-लम्बे फीतों का दोनों ओर से आदान-प्रदान ही हमारी स्नेहमयी भावनाओं की अभिव्यक्ति थी। अपनों को छोड़ने का दुख उस समय इतना अधिक था कि विदेश जाने की सब खुशियां ठंडी पड़ गई थीं। हम सोच रहे थे कि अपने साथी, अपनी भाषा, अपनी धरती सभी कुछ तो छूट रहा है आज हमसे। जैसे किसी अजानी बस्ती में जाने से भय लगता है वैसे ही हमारा मन अदेखे पथों की कल्पना करके सभीत-सा हो रहा था। सभी कुछ तो पराया होगा वहाँ। पराये निवासी, पराई भाषा, पराई भूमि,

और पराया वायुमंडल। कैसे इस पराई दुनियाँ से नाता जोड़ पायेंगे। इन्हीं सब विचारों में डूबा हुआ बोझिल मन अचानक जहाज के भ पू की ध्वनि सुन चौंक पड़ा। अब केवल तीन मिनट बाकी थे। भोंपू की ध्वनि और इसके खुलते हुए लंगर जहाज के चलने की सूचना दे रहे थे। न जाने क्यों दिल बहुत जोर से धड़कने लगा और सच मानो प्रभा, जी चाहने लगा काश यह सम्भव होता कि हम अपनी सीट कैंसिल करवा के नीचे उतर पड़ते। न जाने इस समय विदेश जाने की वे सब उमंगें कहाँ लोप हो गई थी। आज अनुभव कर पाए कि व्यक्ति को अपनी धरती और मिट्टी से कितना प्यार होता है। किसी वस्तु के अभाव में ही उसका असली मूल्य आँका जा सकता है। अब समय हो गया था, लंगर सब खुल गए थे, जहाज मन्थर गति से बम्बई के किनारों को छोड़ आगे बढ़ रहा था और रूमाल हिलाते हुए हम अपने साथियों से अन्तिम विदा ले रहे थे। डेक पर खड़े हम अपने साथियों को जितनी दूर तक देख सकते थे देखते रहे और क्षण भर में देखते ही देखते सब कुछ आँखों से ओझल हो गया। अब तो चारों ओर अथाह जल का साम्राज्य और उस जल में भँवरें बना कर आगे बढ़ता हुआ हमारा जहाज, इसके सिवाय कुछ भी दिखाई नहीं देता था। पेड़, पत्ती, पौधे कुछ भी नहीं धरती का जरा-सा टुकड़ा भी नहीं, केवल अथाह सागर का असीम जल। जहाज की इस नई दुनियाँ में आ नवीन कल्पनाओं में डूबा हुआ हमारा मन अब तो यहीं की नई-नई जिन्दगियों से नाता जोड़ने का प्रयास कर रहा था।

बात की बात में हमारा जहाज बम्बई के किनारों को छोड़ इसकी सीमा को पार करता हुआ अरब सागर की ऊँची उठती गिरती हुई लहरों को चीर कर अविरल गति से अपनी निश्चित दिशा की ओर प्रयाण करने लगा। हम अनमने से ऊपर डेक पर बिछी हुई कुर्सियों पर बैठ कर समुद्र की उन चंचल और तीव्र तरंगों की तुलना मानव-हृदय में उठने वाली भावनाओं से करने लगे। सभी चुप थे मानों मौन व्रत धारण किया हो।

इस नए वातावरण में अपने आपको कुछ-कुछ अजनबी-सा भी महसूस कर रहे थे क्योंकि आज पहला दिन था और किसी से जान पहचान भी न थी। कुछ देर बाद हमें भूख लगी क्योंकि चक्कर आने के डर से आज सवेरे से कुछ नहीं खाया था। केवल एक नीबू तथा दो तीन मौसमी ही ली थी। बरसात के मौसम में सी सिकनेस बहुत होती है और इसीलिए आज हमने कुछ न खाने का निश्चय किया था। पर जब एक घण्टे तक हम बिलकुल अच्छी अवस्था में डेक पर बैठे रहे और चक्कर का आभास तक नहीं हुआ तो न खाने का निश्चय कुछ-कुछ ढीला पड़ने लगा। सोचा नाहक भूखे रहने से क्या लाभ। चक्कर किसी-किसी को आते हैं सबको नहीं, अतः मैंने, तुम्हारी मम्मी और तुम्हारे बाबू तीनों ने रात को डाइनिंग रूम में जाकर 'डिनर' खाने का इरादा किया। डाइनिंग रूम में बैठ कर जहाज का भोजन करने का चाव भी कम न था। अतः हम तीनों उत्सुकता से 'डिनर' की घंटी बजने का इन्तजार करने लगे। पूछने पर मालूम हुआ कि अभी सवा घंटा बाकी है। भूख के साथ-साथ बेसब्री की मात्रा भी बढ़ रही थी। मुश्किल से आधा घंटा भी न बीता होगा कि हमें कुछ-कुछ चक्कर आने लगे। जी भी मिचलाने लगा और कै करने की तबियत-सी होने लगी। पर खाने के मोह के कारण हम अपने आपको सम्भालने का प्रयत्न करते रहे। जहाज इस समय अपनी पूरी रफ्तार पर आ गया था और हिंडोले की भाँति इधर से उधर डोल रहा था। समुद्र के तरंगित होने से जहाज भी डोलने लगा था। धीरे-धीरे हमारे चक्कर भी बढ़ रहे थे और कुर्सियों पर बैठे रहने में कठिनाई का अनुभव हो रहा था। जब किसी प्रकार भी अपने को सम्भाल न सके तो पास बिछी हुई बेंचों पर लेट गए और लेटे-लेटे एक दूसरे की हालत को देखने लगे। हम तीनों के बुरे ही हाल थे। जहाज के कुछ और व्यक्ति भी इन चक्करों के शिकार हुए और अपने-अपने कैबिन में जाकर लेट गए। पर हमारी तो ऐसी विचित्र हालत हुई, ऐसे चक्कर आए और इतना जी मिचलाया कि

अपने कैबिन तक जाने की भी हिम्मत न पड़ी। वहां बेंचों पर काफी देर तक लेटे रहे और चक्करों का दौर बढ़ता ही गया। जब काफी रात हो गई और हम उसी अवस्था में बेंचों पर पड़े रहे तो दो आस्ट्रेलियन युवतियों ने हमारी बाँह पकड़ कर कंधे का सहारा देकर हमें हमारे कैबिन तक पहुँचाया। कैबिन में पहुंचते ही हम वहां पर बिछी हुई चारपाइयों पर चारों खाने चित्त होकर पड़ गए। कपड़े तक बदलने की हिम्मत न हुई। गर्मी में वही रेशमी साड़ी और सिल्कन ब्लाउज पहने रहे। रात को स्वप्न में मुझे वहाँ का डाइनिंग हॉल और अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजन दिखाई दे रहे थे। लगातार तीन दिन तक हमारी ऐसी ही हालत रही। बिना कुल्ला ब्रुश और कंघी किए रोगियों की भाँति सारा दिन अपने कैबिन की चारपाइयों पर पड़े-पड़े डाइनिंग हॉल में बजने वाली नाश्ते, चाय और खाने की घंटियों को सुन-सुन कर तरसते रहते। कभी किसी को रहम आ जाता तो हमारा हाथ पकड़ कर हमें ऊपर डेक पर ले जाकर वहाँ की बेंच पर लिटा देता और रात होने पर हमें हमारे कैबिन में पहुँचा देता। तुम्हें यकीन न आएगा प्रभा, कि ये तीन दिन हमने कैसे गुजारे। चक्करों के कारण ऐसी बुरी हालत तो इससे पहले कभी नहीं हुई थी। तुम्हारी मम्मी को तो पहाड़ जाते समय बस तक में भी कभी चक्कर नहीं आए थे। पर यहाँ तो सबके होश ठिकाने आ गए। चार दिन में ही हमारे मुँह ऐसे हो गये मानों बरसों के बीमार हों। तुम्हारे बाबू की दाढ़ी बढ़ गई थी और हम दोनों के बाल बुरी तरह से उलझ कर जटायें बन गए थे। बेचारी आस्ट्रेलियन युवतियों ने हमारी बहुत तीमारदारी की। कभी ऊपर डेक पर ठंडी हवा में ले जातीं, कभी, खट्टे सेब लाकर खिलातीं और कभी खुद अपने हाथ से नीबू चुसाने लगतीं। उनकी देख रेख में हम जल्दी ही अच्छे भी हो गए वरना न जाने कितने दिन के भोगवान भुगतने पड़ते। चौथे दिन जब समुद्र का प्रकोप कुछ शान्त हुआ और जहाज का हिलना कुछ कम हुआ तो हम हिम्मत करके उठे। ब्रुश किया, हाथ मुँह धोया, चार दिन के पहने हुए कपड़े बदले तब

कहीं दरिद्रता दूर हुई। कंघी करने की अब तक हिम्मत नहीं हुई क्योंकि चार दिन की उलझी हुई जटाओं को सुलझाने में काफी शक्ति की जरूरत थी और हम अभी काफी कमजोर थे। बिना चोटी खोले ऊपर से ही बाल ठीक कर लिए। डाइनिंग रूम में तो अब तक जाने की हिम्मत न पड़ी क्योंकि हमें डर था कि कहीं वहाँ सबके सामने चक्कर न आने लगें और जी मिचला कर कै न हो जाय। कैबिन में ही फल आदि मँगा कर खा लिए। अदन आने तक हम बिल्कुल ठीक हो गए क्योंकि अब समु बहुत शान्त हो गया था।

अच्छा अब शेष अगले पत्र में। ढेर सा प्यार।

तुम्हारी—

चाची

३ जुलाई, १९५१

प्रभा रानी,

'अदन' में तुम्हारा और तुम्हारे मामा का पत्र पाकर कितना हर्ष हुआ तुम्हारे लिए इसका अनुमान लगाना कठिन है। बार-बार पढ़ने पर भी मन की उत्सुकता शांत न होती थी। हमने इसे अटैची में सम्भाल कर रख दिया है और घर की याद आने पर पुनः अटैची से निकाल कर पढ़ने लगते हैं। कभी-कभी सोचते हैं कि विज्ञान ने अगर इतनी उन्नति न की होती तो एक अरसे तक तुम सबकी हालत से बेखबर ही रहना पड़ता। तुमने जहाज के बारे में अनेक प्रश्न पूछे हैं, मैं तुम्हारे पूछने से पहले ही ये सब बातें लिखने को सोच रही थी।

हमारा "एस० एस० आस्ट्रेलिया" जहाज जिसका वजन उन्यासी हजार टन है बहुत सुन्दर तथा नया पोत है। इसने पहली बार जल में प्रवेश किया है और आस्ट्रेलिया से जिनेवा तक की यात्रा इसकी यह प्रथम यात्रा है। कैबिन और शाला की सफाई और सजावट आदि में कमाल किया गया है। हर चीज चमाचम कर रही है। चमचमाते हुए काठ के फर्श पर मुँह तक देखा जा सकता है। हमें छियत्तर नं० का कैबिन मिला है। चारपाई, बिछौना और कैबिन की भीतरी स्थिति बहुत साफ सुथरी है। भीतर ही ठंडे, गर्म पानी के नलों का बेसिन चमक रहा है। एक ओर दो तौलिए टंगे हैं दूसरी ओर शीशे की छोटी-सी सुराही में ठंडा पानी पीने के लिए भरा हुआ है। पास ही शीशे के सुन्दर गिलास रखे हैं। बिछौने के पास ही कलापूर्ण टेबुल लैम्प लगा हुआ है जिससे रात में पढ़ने या तुम्हें पत्र लिखने में बहुत सुविधा रहती है। केबिन का रोशनदान समुद्र की तरफ खुलता है जिससे दूर तक का दृश्य चारपाई पर बैठे-बैठे देख सकते हैं। यद्यपि सात सौ यात्री इस जहाज में यात्रा कर रहे हैं पर

कहीं भी कूड़े करकट का नाम नहीं। प्रातःकाल पाँच बजे से लेकर दोपहर के खाने तक पच्चीस आदमी इसकी सफाई में संलग्न रहते हैं। जहाज का कोना कोना बुरुश और गीले कपड़े से पोछा जाता है। कैबिन, बाथरूम, डेक, सीढ़ियाँ आदि जिस ओर भी नजर जाती है चमचम करते हुए दिखाई देते हैं। सफाई करने वाले ये व्यक्ति हमारे यहाँ की तरह जमादार, नौकर या मजदूर नहीं हैं बल्कि सूट बूट पहने टाई लगाये चूं-चूं करता पालिश किया हुआ जूता और मोजे पहन कर यहाँ के किसी बड़े साहब से कम हैसियत से नहीं मालूम होते। लम्बे-लम्बे बुरुश हाथ में लिए खड़े-खड़े फर्श की सफाई करते हैं। जहाज के यात्रियों से भी बड़ी अदब और तहजीब से मुस्करा कर बात करते हैं।

बाहर से देखने में यद्यपि जहाज बहुत बड़ा मालूम नहीं होता पर अन्दर आकर इसकी विशालता, स्वच्छता और सौन्दर्य देखकर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। इसमें सात बड़ी-बड़ी विशाल मंजिलें हैं। जितना पानी के ऊपर है उतना ही पानी के नीचे। सबसे नीचे की मंजिल में बड़े बड़े गोदाम हैं जिनमें लाने, ले जाने का माल भरा रहता है। शेष सभी मंजिलों में कैबिन, स्नानगृह, शौचालय, शृंगार कक्ष आदि बने हुए हैं। सबसे नीचे का क्लास थर्ड क्लास है और उससे ऊपर का टूरिस्ट और फिर सेकिंड और फर्स्ट। हम टूरिस्ट क्लास में हैं। थर्ड क्लास में अलग अलग कैबिन नहीं हैं बल्कि बड़े-बड़े कमरों में पचीस-पचीस आदमी एक साथ रहते हैं। नीचे होने के कारण इन बेचारों को चक्कर बहुत आते हैं। आस्ट्रिया की विश्व स्काउट सम्मेलन (World Scout Conference) में जाने वाले एक सौ पचास भारतीय स्काउट भी इसी थर्ड क्लास में यात्रा कर रहे हैं। अधिकतर ये बेचारे ऊपर डेक पर ही बैठे रहते हैं क्योंकि नीचे जाते ही सिर चकराने लगता है। जरा ऊपर की ओर आओ प्रभा, तो जहाज की चौथी मंजिल पर बना हुआ विशाल और सुन्दर एयर कन्डीशन डाइनिंग हॉल अपनी अनुपमता का परिचय देता हुआ नजर आता है। भीतर जाते

ही नाना प्रकार के भोजनों की सुगन्ध से जी ललचाये बिना नहीं रहता। चार-चार कुर्सियों के बीच में छोटे छोटे चम्मच, गिलास तथा चाकू आदि से सुसज्जित पास-पास बिछी हुई सैकड़ों मेजें, कुर्सियों पर रखे हुए कागज के नेपकीन, इधर-उधर चक्कर काटकर मुस्तैदी से अपनी ड्यूटी पूरा करते हुए बोमियों खानसामें और हंसी मजाक करते हुए खाने का सच्चा आनन्द उठाते हुए जहाज के यात्री, सभी वस्तुएँ एक सुन्दर दृश्य उपस्थित करती हैं। कुछ वस्तु माँगने के लिए खानसामों को आवाज देने की आवश्यकता नहीं पड़ती वे स्वयं ही हमारी आवश्यकता की पूर्ति हमारी माँग से पूर्व कर देते हैं। ऐसा सुन्दर और सुव्यवस्थित ढंग हमने तो इससे पहले कभी नहीं देखा था। बम्बई के बड़े-बड़े होटलों तक में ऐसी सुन्दर व्यवस्था देखने में नहीं आई।

जहाज की पाँचवीं मंजिल के बीचों बीच एक विशाल बॉल रूम है जहाँ योरोपियन नृत्य होता है। रात के खाने के पश्चात् प्रतिदिन ही यहाँ कोई न कोई प्रोग्राम रहता है कभी बॉल डांस या कभी खाली बैंड बजता है।

सबसे ऊपर की तीन मंजिलों में कमरों के बाहर तीन डेक हैं जहाँ की शोभा बस देखते ही बनती है। यह स्थान जहाज का सबसे अधिक सुन्दर और रोमांटिक स्थान माना जाता है। फर्राटे की ठंडी हवा के शीतल झोंके क्षण भर के लिए भी बालों को विश्राम नहीं लेने देते। चारों ओर जल के अथाह सागर और समुद्र की लहरों के वेग को देख हृदय-सागर की भावलहरियाँ भी अपनी चरमावस्था पर पहुँच जाती हैं। सबेरे और शाम के समय तो डेक की रौनक दुगनी हो जाती है। प्रत्येक स्त्री पुरुष नहा धोकर बढ़िया से बढ़िया पोशाक में अपने-अपने कैबिन से निकल कर डेक पर घूमते हुए दिखाई देते हैं। चारों ओर बेंच बिछे हैं छोटी-छोटी कपड़े की कुर्सियों का भी अभाव नहीं पर इधर से उधर चहलकदमी करने में कुछ अधिक आनन्द

प्राप्त होता है। कुछ देर बाद रुक कर स्त्री पुरुषों के झुंड के झुंड बेंचों पर लेट कर समुद्र के इन शीतल झोंकों का आनन्द लेने लगते हैं। सबसे ऊपर की मंजिल वाले डेक पर तो खड़ा होना भी दुश्वार हो जाता है क्योंकि वायु का वेग इतना अधिक होता है कि साड़ी और बाल सम्भाले नहीं सम्भलते। कल मैं और तुम्हारी मम्मी जरा देर के लिये वहाँ गईं तो बुरी हालत हो गई हमारी। तुम देखती तो हँस हस कर लोट पोट हो जाती। चोटी में से सब बाल निकल कर बुरी तरह सारे मुँह पर बिखर गए। साड़ी की चुनट गरारा-सा बन कर हवा में उड़ रही थी और हमारे सम्भाले नहीं सम्भल रही थी। यह तो कहो गनीमत हुई कि सवेरे तड़के का समय होने के कारण वहां दो एक स्काउट लड़कों को छोड़ कर और कोई नहीं था वरना हम तो शर्म के मारे वहीं ढेर हो जाते। उस दिन से तो हमने कान पकड़ा ऊपर जाने का। वहाँ तो जाँघिया और फ्रॉकवाली योरोपियन स्त्रियों की ही गुजर है। हम खामखाँ मुसीबत में फंस गए।

इसके अतिरिक्त शृंगार कक्ष शौचालय आदि समुचित स्थानों पर पृथक पृथक बने हैं जहाँ पहुंच जाओ कुर्सी मेज किताबें आदि सब वस्तुयें उपयुक्त स्थानों पर रखी हुई दिखाई देती हैं। एक छोटे से कमरे में दो टाइप राइटर लिफाफे कागज आदि पत्र लिखने का सामान रखा हुआ है कोई भी व्यक्ति यहाँ आकर पत्र लिखने या टाइप करने की आवश्यकता पूरी कर सकता है। मैंने दो तीन पत्र टाइप करके देहली सरला और मुनिया के नाम भेजे हैं। बहुत ही अच्छा लगता है यहाँ बैठ कर टाइप करने में। एक कमरे में लोहा करने के तीन चार प्लक लगे हुए हैं और दो बड़ी-बड़ी मेज रखी हैं। यहाँ अनेक स्त्री पुरुष अपने धुले हुये कपड़ों पर लोहा करने आते हैं। यह मेज हमने तो कभी खाली ही नहीं देखी। कई बार सोचा अपनी धुली हुई साड़ियों पर हम भी लोहा कर लें पर मेज खाली हो तब तो। दूसरे साड़ी में लोहा करने का मतलब है

पूरा आध घंटा लेना जब कि ये युवतियाँ तनिक देर में ही अपनी फ्राकों पर लोहा कर लेती हैं। एक दिन एक आस्ट्रेलियन युवती स्वयं हमारी मुसी हुई साड़ियों पर लोहा करके दे गई।

तीसरी मंजिल के डेक के बीचों बीच एक छोटा सा तैरने का तालाब है जिस पर जाल ढका रहता है जिस से पानी गंदा न होने पाए। सुबह शाम दो घंटे के लिए जब जाल को हटाया जाता है तो अनेकों स्त्री पुरुष तैरने की इच्छा पूरी करते हैं। तैरते हुए बहुत हँसी मजाक और शोरगुल होता है। यहाँ की युवतियाँ तैरते समय तैरने की पोशाक (swimming costume) और सिर पर प्लास्टिक की टोपी पहन लेती हैं जिस से बालों के गीले होने का भय नहीं रहता। ऐसी टोपी हम तुम्हारे लिए भी खरीदने की सोच रहे हैं क्योंकि छुट्टी वाले दिन जब तुम गंगाजी में तैरना सीखने जाती हो तुम्हारे बालों की बुरी दशा हो जाती है और तुम्हारी मम्मी के लिए उन्हें सुलझाने और सँवारने का एक काम बढ़ जाता है। इस छोटे से तालाब में स्त्री पुरुष एक साथ बिना किसी भेद भाव और संकोच के तैरते हैं। कभी-कभी इन तैरने वाले व्यक्तियों का जोश इतना बढ़ जाता है कि तालाब के छींटे दूर तक बिछे बेंचों तक पहुंचने लगते हैं। हम तो बैठे-बैठे इस दृश्य का आनन्द उठाते हैं। जब तक लंच की घंटी नहीं बज जाती ये व्यक्ति बाहर निकलने का नाम नहीं लेते।

अन्य मनोरंजन के साधन भी यहाँ कम नहीं। कैरम बोर्ड, शतरंज, ताश, रिंग, बैडमिंटन आदि न जाने कितने खेल हैं जिन्हें इच्छानुसार जब चाहे प्रयोग कर सकते हैं। तुम होती तो सारा दिन बैडमिन्टन या ताश में लगी रहती हम लोग तो सबके साथ खेलने में झेंपती हैं। कई बार कुछ आस्ट्रेलियन युवतियाँ जिद करके रिंग खिलाने के लिए ले गई। ताश भी दो एक मर्तबे उनके साथ खेली, पर अभी तक न जाने क्यों इतनी हिचक नहीं खुली है।

पाँचवीं मंजिल की डेक पर एक किनारे एक बहुत बड़ा योरोप का नक्शा टंगा है जहाँ अक्सर स्त्री पुरुषों की भीड़ लगी रहती है। एक छोटे से लाल झंडे के द्वारा इस नक्शे में यह दिखाया जाता है कि किस समुद्र में से हमारा जहाज गुजर रहा है और आगे आने वाली बन्दरगाह कितनी दूर है। इस झंडे को रोजाना सवेरे पिन से उसी स्थान पर टाँक दिया जाता है जहाँ से हमारा जहाज गुजरता है। पहले तो यह बात हमारी कुछ समझ में नहीं आयी फिर एक आस्ट्रेलियन युवती से पूछने पर सब मालूम हो गया। इस समय हम अरबसागर को पार करके लालसागर में जा रहे हैं और वह लाल झंडा भी 'रेड सी' पर ही टंगा हुआ है।

ये सब तो हुई प्रभा टूरिस्ट क्लास की बातें, अब जरा फर्स्ट क्लास के घेरे तक आओ। सीढ़ी चढ़ते ही जमीन आसमान का अन्तर प्रतीत होने लगता है। यहाँ की डेक और केबिन में यह आभास ही नहीं हो पाता कि हम जहाज की यात्रा कर रहे हैं क्योंकि ऊँचा होने के कारण तनिक भी हिलता-डुलता नहीं। इसकी डेक पर चढ़ते ही किसी दूसरे ही आनन्द का अनुभव होने लगता है। यह स्थान हम लोगों के टूरिस्ट क्लास से काफी दूर, पृथक सा प्रतीत होता है। इसमें रहने वाले रईस यात्री अपने ऊँचे ऊँचे कमरों की कुर्सियों पर बैठे, मेज पर बियर का गिलास रखे सिगरेट के कश खींचते हुए खिड़की के जालीदार पर्दों के नीचे की रौल चौल का आनन्द उठाते हैं। उनके स्नानागृह, शौचनालय, भोजनगृह नृत्यगृह आदि सब वस्तुयें हम लोगों से पृथक हैं। प्राय: इन लोगों से हमारा बहुत कम सम्पर्क हो पाता है। भला ये अपने सुन्दर और हवादार कमरों को छोड़ हम लोगों के उमगमग करते हुए केबिन में क्यों झाँकने लगे? एक ही जहाज में एक साथ यात्रा करते हुए भी ये लोग अन्य यात्रियों से एक पृथक ही जीवन व्यतीत करते हैं। ये अन्य यात्रियों की भाँति उतने मिलनसार भी नहीं होते अत: इनसे बातचीत करने का साहस कम ही लोगों में होता है।

इस प्रकार प्रभा, इस सात मंजिल के विशाल जहाज में हम लोग एक निश्चित जिन्दगी व्यतीत कर रहे हैं। किसी की चिन्ता या जिम्मेदारी से बिलकुल मुक्त। साग-सब्जी मंगवाने की फिकर, घर की देख रेख, नौकरों को डाँटना-डपटना और सुबह शाम चूल्हे की चिन्ता आदि से बिलकुल निश्चिन्त हैं। ऐसी आराम तलब जिन्दगी का आनन्द आज जीवन में पहली बार अनुभव कर रहे हैं। बस केवल कभी-कभी तुम लोगों की याद आती है और घर वालों के खाने पीने की फिकर होने लगती है। इसके सिवाय चिन्ता का कोई भी कारण नहीं। सारा जहाज़ एक बड़ा कुटुम्ब-सा प्रतीत होने लगा है और जहाँ मन चाहता है चहलकदमी करते हुए निकल जाते हैं। कहीं कुछ रोक-टोक या बन्धन नहीं। कभी कभी दूर अजानी छतों पर पहुँच जाते हैं तो अपना कैबिन खोजना भी मुश्किल हो जाता है। कितनी ही देर तक इधर उधर भटकते हुए पूछताछ करके तब कहीं अपने कैबिन तक पहुँच पाते हैं। ऐसी रसिक जिन्दगी आज पहली बार व्यतीत कर रहे हैं।

हमारे जहाज में ६३ आस्ट्रेलियन प्रतिनिधियों के अतिरिक्त बर्लिन जाने वाले तीन सीलोनी डेलीगेट भी हैं जिनमें से एक महिला और दो पुरुष हैं। सीलोनी महिला साँवले रंग और बंगाली नैननक्श की सी है। स्वभाव की भी बहुत अच्छी है। हमारी उससे काफी घनिष्ठता हो गई है और हमने उसका पता आदि भी लिख लिया है। आस्ट्रिया में होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय स्काउट उत्सव में सम्मिलित होने के लिए १२५ भारतीय स्काउट भी हमारे साथ इसी जहाज में यात्रा कर रहे हैं। ये लड़के अधिकतर मारवाड़ी परिवार के हैं। उनके अतिरिक्त अन्य योरोपियन यात्री हैं जिनमें से कोई लन्दन, कोई स्विटजरलैण्ड और कोई योरोप भ्रमण के लिए जा रहे हैं। कितने ही रोगी स्विटजरलैण्ड इलाज कराने के लिए जा रहे हैं जो बेचारे सदा डेक की बैंचों या अपने कैबिन में ही लेटे रहते हैं।

इस प्रकार हमारा जहाज सात सौ जिन्दगियों का बोझ सम्भाले अवि-श्राम गति से अपनी निश्चित दिशा की ओर प्रयाण कर रहा है।

शेष फिर,

प्यार

तुम्हारी—

चाची

५ जुलाई, १९५१

प्रिय प्रभा,

हमारे जहाज की भी एक अलग दुनियाँ है जिसे हम हँसी खुशी की दुनियाँ कह सकते हैं। अब तो हमारी सबसे जान पहचान हो गई है और कितनों से बहुत घनिष्टता भी। हमारा पुराना संकोची स्वभाव अब धीरे-धीरे दूर होता जा रहा है। इस समय हम लाल सागर में से गुजर रहे हैं और पोर्टसईद आने में केवल दो दिन शेष हैं। आस्ट्रेलियन प्रतिनिधि और भारतीय स्काउटों के होने से सारे जहाज में बहुत चहल-पहल और रौनक रहती है। आस्ट्रेलियन प्रतिनिधि बहुत ही भले और स्नेही स्वभाव के हैं। कितनी ही लड़कियों से तो हम खूब घुलमिल गए हैं और वे दिन में कई बार हमारे कैबिन में चक्कर काट जाती हैं। हमें घसीट कर ऊपर डैक पर ले जाकर घंटों गपशप करती हैं। एक न्यूज़ीलैण्ड की लड़की तो हमसे बहुत ही स्नेह करने लगी है और रोजाना जब तक हमारे साथ घंटा दो घंटा नहीं बिता लेती उसे चैन नहीं पड़ती। देखने में बड़ी गोल मटोल लम्बी चौड़ी और गुदगुदी सी कुछ-कुछ तुम्हारे स्कूल की जिन्नियन की तरह लगती है। इसका नाम तो काफी लम्बा चौड़ा है पर सब लोग "बेटी" कहकर पुकारते हैं। यह ट्रेड यूनियन की मेम्बर है और वहाँ की ट्रेडयूनियन की ओर से चुन कर इसे बर्लिन सम्मेलन के लिए भेजा गया है। गरीब होने के कारण इसका सब खर्चा भी ट्रेड यूनियन ने ही बर्दाश्त किया है। सचमुच बहुत ही खुश मिजाज और हँसमुख लड़की है। बेचारी के पास कुल तीन चार छींट की फ्रॉकें हैं उन्हीं को धो धोकर इस्त्री करके पहनती है। बर्लिन जाने की जितनी खुशी इसे है अन्य किसी युवक या युवती को नहीं। कहती है विदेश यात्रा उसके जीवन की सबसे बड़ी इच्छा थी जो आज पूरी होने जा रही

है। वह सारा दिन जहाज में इधर से उधर फुदकती हुई नजर आती है। कभी हमारे कमरे में, कभी डेक पर, कभी तालाब में नहाती हुई, कभी बॉल डॉन्स करती हुई और कभी अपनी फ्राक पर इस्त्री करती हुई दिखाई देती है। इसे हमने एक मिनट कभी खाली बैठे नहीं देखा। एक सूटर भी बुनने के लिए लगा रखा है। बातें करते समय सूटर का बुनना जारी रहता है। हम लोगों का तो बेचारी बहुत ही ख्याल रखती है। अभी परसों की घटना है, गर्मी और उमस के कारण जिसे देखो वही अपना चदरा तकिया लिए डेक की ओर चला आ रहा था। हम जो खा पी कर रात को सोने के लिए ऊपर डेक पर आए तो देखा कि तीनों डेक खचाखच भरी हुई थीं कहीं भी सोने का ठिकाना न था। पहले तो हम निराश होकर केबिन में जाकर ही सोने लगे पर गर्मी इतनी अधिक थी कि नीचे जाने की हिम्मत न पड़ी। बहुत कोशिश करने पर बिचली डेक के एक कोने में छोटा-सा बेंच खाली पड़ा हुआ दिखाई दिया। हम दोनों उसी बेंच पर बिना तकिये चदरे के सिकुड़ कर लेट गईं। इतने में ही बेटी ने हमें दूर से देखा और हमारी कठिनाई का अनुमान करके लपकी हुई हमारे पास आई। हमारे बहुतेरा मना करने पर भी कहीं से खोजखाज कर गद्दा और तकिया लाई और हमारी बेंच पर बिछाकर हमें आराम से सुला दिया। हम दिन भर के थके हारे तो थे ही, गुदगुदे गद्दे और ठंडी हवा के झोंकों को पा लेटते ही खुर्राटे भरने लगे। सबेरे उठ कर हमने देखा कि बेटी बेंच के नीचे हमारे पाँव के पास बिना गद्दे तकिए के सिकुड़ी हुई-सी सो रही है। सच प्रभा, उस समय उसकी इस आत्मीयता पर तो हम द्रवित-से हो गए और कुछ भी कहते न बना। शायद उसने अपना गद्दा तकिया लाकर ही हमें दे दिया था और स्वयं खाली डेक पर बिना गद्दे के सो गई थी। हमारे उठने के बाद उसने हमारी उसी बेंच पर लेट कर अपनी रात की नींद पूरी की। दिल तो वस्तुतः गरीबों के पास ही रहता है और प्रेम करना भी वे ही जानते हैं। धनिक तो प्रेम का एक ढोंग रचते हैं। बेटी की इस बात ने हमें बहुत ही प्रभावित किया और अब तो वह हमारे बहुत ही नजदीक आ

गई है। हमने उसकी तीन-चार फोटो उतारी हैं, धुल कर आने पर अगले पत्र में तुम्हें भेज देंगे।

१२५ स्काउट प्रतिनिधियों ने भी जहाज की रौनक को दुगना कर दिया है। खाकी वर्दी पहने हृष्ट-पुष्ट और चुस्त शरीर वाले ये लड़के सारे जहाज में इधर से उधर चहल कदमी करते हुए दिखाई देते हैं। इनके लीडर भी बड़े तेज और दिलचस्प आदमी मालूम पड़ते हैं। उनकी एक घुड़की में सब लड़कों के होश ठिकाने आ जाते हैं। ठिगना कद, गठा हुआ बदन, साँवला रंग, फुर्तीली देह और आँखों पर चश्मा देखने में प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व जान पड़ता है। कभी-कभी सन्ध्या समय ये स्काउट लड़के और आस्ट्रेलियन प्रतिनिधि फर्स्ट क्लास की डेक पर अपने-अपने सांस्कृतिक प्रोग्राम उपस्थित करते हैं। बारी-बारी से दोनों प्रतिनिधियों द्वारा उपस्थित किए गए ये प्रोग्राम बहुत ही रोचक तथा आकर्षक होते हैं। ये प्रोग्राम हम कभी नहीं छोड़ते। पाँच-सात मिनट पहले से ही जाकर बैठ जाते हैं। स्काउटों का सँपेरा डांस जहाज के सब व्यक्तियों को बहुत पसन्द आया और उन्होंने इसे तीन-तीन बार देखा। इस प्रकार इन स्काउटों ने जहाज की जिन्दगी में एक नई जान-सी डाल दी है। दिन भर के प्रोग्राम की सूची बाहर बड़े दरवाजे पर सुबह ही टाँग दी जाती है जिसमें सब प्रोग्रामों का स्थान, समय और नाम दे दिये जाते हैं। इसमें सब यात्रियों को देखने की सुविधा रहती है।

इन स्काउटों के होने से हम भारतीयों की संख्या काफी हो गई है। इसलिए जहाज में भारतीय भोजन का भी कुछ प्रबन्ध कर दिया गया है। अन्यथा केवल सूखी डबल रोटी और बिस्कुट पर ही दिन काटने पड़ते। अब तो सुबह के नाश्ते में दलिया, डबल रोटी और चाय का समुचित प्रबन्ध है। दोपहर के खाने में चावल, तरकारी और सूप आदि दिया जाता है। कल तो बेसन की पकौड़ी भी आलू भरी हुई मिली थी, पर तुम्हारे बाबू ने इसलिए नहीं खायीं कि कहीं बेसन की जगह अंडा न मिला हो पर बाद में पूछने पर मालूम हुआ कि वह बेसन ही था। अब

पछता रहे हैं बेचारे। यदि फिर कभी मिलेगी तो ब्याज सहित कल की कमी पूरी करेंगे। और हाँ, खाने के बाद यहाँ आइसक्रीम बहुत अच्छी मिलती है। कभी चाकलेट की, कभी आम की और कभी पिश्ते बादाम की। चाकलेटके नाम से तो तुम्हारे मुँह में पानी भर आया होगा, क्योंकि बम्बई और कलकत्ते में चार-चार आइसक्रीम खाकर भी तुम्हारी तबियत नहीं भरती थी। आइसक्रीम खाते समय रोज ही तुम्हारी याद आती है। बाकी सब नॉनवेजीटेरियन खाना-पीना, माँस, अंडे और कबाब ही—बनता है जिनकी ओर देखना तनिक भी रुचे नहीं। कल शाम को बेटी जीभ चाटती हुई हमारे पास आई और कहा कि कल का कबाब बहुत अच्छा बना था।

यहाँ भूख बहुत लगती है प्रभा, तुम मुझे खाते देखो तो आश्चर्य करने लगो। वहाँ तो तुम सदा ही शिकायत करती थीं कि चाची तो रोज फास्टिंग ही किया करती हैं पर यहाँ तो चार बार खाने पर भी पेट नहीं भरता है। एक तो समुद्र का किनारा, दूसरे खुली आब-हवा और फिर निश्चिन्त और आराम तलब जिन्दगी। रोटी न होने से चावल और तरकारी तनिक देर में ही हजम हो जाती है और अगली घंटी बजने की बड़ी अधीरता से प्रतीक्षा करने लगते हैं। घंटा बजते ही झुण्ड के झुण्ड बड़ी तेजी से डाइनिंग रूम की ओर लपकते हैं और अपनी-अपनी सीटों पर बैठ कर बेसब्री से खाना मिलने का इन्तजार करने लगते हैं। अगर कभी किसी को घंटी न सुनाई पड़े तो सारा दिन फाका ही करना पड़े। अभी परसों की बात है कि मैं ऊपर डेक पर बैठी तुम्हें पत्र लिखने में ऐसी तल्लीन हो गई कि खाने की घंटी सुनाई ही न पड़ी। इतने में तुम्हारी मम्मी दौड़ती हुई आईं और घंटी बजने की सूचना दी। अगर वह न बुलातीं तो बस सारा दिन भूख के मारे कैसा होना पड़ता। और हाँ, आज तो तुम्हारे बापू के नहाने में देर हो गई और वे पूरा गुसलखाने में ही थे कि घंटी बज गई। पंप और फुहारे की आवाज से उनको वे घंटी नहीं सुनाई। गुसलखाने में नहाते रहे। फिर हम दोनों ने जाकर उनके गुसलखाने का दरवाजा खटखटाया और घंटी बज जाने की सूचना दी तो वहीं फुर्ती

से कपड़े आदि पहन कर सीधे डाइनिंग रूम की ओर लपके। इतनी जल्दी करने पर भी उन्हें देर हो ही गई और सबसे पहले जो सूप मिलता है उससे उन्हें वंचित ही रहना पड़ा। आज टिमाटर का सूप मिला था जो तुम्हारे बाबू को बहुत पसन्द है। वैसे अपनी तरफ से तो ये खाने-पीने के मामलों में कभी चूकते नहीं, पर आज न जाने क्या हो गया उन्हें। हम दोनों ने भी मिलकर उन्हें खूब चिढ़ाया कि आज का सूप बहुत ही बढ़िया बना था।

घंटी बजने की दूसरी उत्सुकता इस बात की भी रहती है कि देखो आज खाने में क्या मिलता है। चावल-तरकारी देखकर तो मन हरा हो जाता है, पर कभी-कभी डबलरोटी और आलू पर ही बसर करनी पड़ती है। बैरे द्वारा परोसने में तनिक भी विलम्ब होने से झल्लाहट-सी उत्पन्न होने लगती है। सच्ची भूख का आनन्द तो शायद जीवन में आज पहली बार ले रहे हैं।

प्रत्येक भोजन के समय में दो शिफ्ट होती हैं, क्योंकि एक बार में सब व्यक्ति नहीं खा सकते। हमारी बारी दूसरी शिफ्ट में आती है। जब पहली शिफ्ट के व्यक्ति खाकर जबान चाटते हुए बाहर आते हैं तब उनसे खाने के विषय में पूछताछ करके मन को संतोष दे लेते हैं।

हाँ, एक बात और। यहाँ की ईमानदारी और सच्चाई ने हमें बहुत ही प्रभावित किया है। हम लोग अपना कैबिन खुला छोड़कर ऊपर नीचे इधर-उधर घंटों चक्कर लगाया करते हैं। पर क्या मजाल कि एक सुई भी इधर से उधर हो जाए। तुम्हारे बाबू ने तो कई बार टोका कि कम से कम अपने बक्सों के ताले तो बन्द कर दिया करो, पर तुम जानती हो ताला लगाने में हम दोनों कितने आलसी हैं और लापरवाही में भी एक दूसरे से कम नहीं हैं। सब कुछ खुला और फैला हुआ छोड़ कर डेक पर जा बैठते हैं। बैरा जब सफाई करने आता है तब सब वस्तुओं को झाड़-पोंछ कर ठीक-ठिकाने से लगाकर कैबिन बन्द करके चला जाता है।

यहाँ अभी तक एक सुई भी गुम नहीं हुई है जब कि कानपुर में तिजोरियों तक से चीजें गायब हो जाती है।

मगर एक बात की यहाँ बड़ी तकलीफ है। तुम तो शायद सुनकर नाक-भौं सिकोड़ने लगो। पाखाने में यहाँ शौच के लिए पानी नहीं होता, कागज की एक मोटी तह तार पर टंगी रहती है उसी से कागज फाड़ कर साफ कर लेते हैं, हमें तो ऐसा करने मे बड़ी घृणा-सी मालूम हुई और सन्तोष भी न हुआ। फिर हमने इसका हल ढूँढ़ निकाला। अपने कैबिन में रखा हुआ पीने का पानी, शीशे के गिलास में पाखाने जाते समय भरकर ले जाते हैं और उसी से काम चलाते हैं। आगे देखो यह समस्या कैसे सुलझती है।

यहाँ के बॉल रूम में रात के भोजन के पश्चात् हर तीसरे दिन योरोपियन नृत्य होता है। यह हमें बहुत रोचक लगता है। डाँस करने वाले अजब और निराले जोड़ों को देख हँसी आए बिना नहीं रहती। कभी ठिगना नाटा सा व्यक्ति और लम्बी चौड़ी औरत, कभी काले रंग के दाढ़ी मूछों वाले सरदार जी और खूबसूरत सी छरहरे बदन की युवती। कभी मुँह पर झुर्रियाँ पड़ी हुई सफेद बालों वाली बुढ़िया और नौजवान युवक। इन जोड़ों का डांस तो हमें जहाज का सबसे सुन्दर और रोचक प्रोग्राम लगता है! बूढ़ी स्त्रियों का डांस में इतनी तन्मयता देख कर आश्चर्य होने लगता है। एक सिक्ख युवक तो हमेशा एक आस्ट्रेलियन लड़की पर मुग्ध-सा रहता है और हर बार उससे डान्स करने का अनुरोध करता है। डांस के बाद उसे बैठने के लिए कुर्सी देते हुए कहता है—"आइये, बैठिये, आप बहुत थक गई होंगी। कहिए, पीने के लिए क्या मँगवाऊँ; चाय, [illegible], [illegible], [illegible] जो आप कहें। [illegible] लड़की अनमने मन से बहुत ही [illegible] में [illegible] उत्तर देकर भागने की-सी कोशिश करती है। हमारे विचार में वह लड़की इस सिक्ख नवयुवक को

जरा भी पसन्द नहीं करती। नृत्य का यह प्रोग्राम रात के बारह बजे तक चलता रहता है।

शाम और सुबह के समय तो अधिकतर हम लोग डेक पर ही रहते हैं, क्योंकि इस समय इसकी शोभा अपनी चरमावस्था पर पहुँच जाती है। चारों ओर चहलकदमी करते हुए युवक-युवतियों पर पुते हुए पाउडर, क्रीम और सैंट की सुगन्ध से सारी डेक महकने लगती है। यहाँ से आँख उठाकर जब कभी नीचे की ओर देखते हैं तो लहरें मारता हुआ अथाह सागर और प्रकृति का मनोरम स्वरूप दृष्टिगत होता है। हृदय और मस्तिष्क दोनों ही इस वातावरण में विभोर-से हो जाते हैं और प्रकृति के बिखरे हुए सौंदर्य का आनन्द उठाने लगते हैं। प्रातःकाल के बाल-रवि की सुनहरी रश्मियाँ जब सर्वप्रथम हमारे जहाज की छतों का आलिंगन करती हैं तो एक अनुपम दृश्य की सृष्टि होती है। रात्रि में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब सागर की लहरों से अठखेलियाँ करता हुआ दिखाई पड़ता है। पूर्णमासी के दिन डेक पर खड़े होकर प्रकृति का यह सौंदर्य देखते ही बन रहा था। चारों ओर छिटकी हुई चाँदनी और पूरे चाँद को देख कर पूरी शक्ति के साथ उछलती हुई लहरें और लहरों को चीरकर आगे बढ़ता हुआ हमारा जहाज, सबकी शोभा सचमुच अद्वितीय थी।

इस प्रकार हम जहाज के इस रोचक एवं सुखद जीवन का आनन्द उठाते हुए अपनी निश्चित दिशा की ओर बढ़ रहे हैं। अब तो हमारी झिझक भी बहुत कुछ कम हो गई है। वातावरण का प्रभाव तो पड़ता ही है। अंग्रेजी बोलने का अभ्यास भी काफी हो गया है, क्योंकि कुछ काउटों को छोड़ सबसे अंग्रेजी में ही बात करनी पड़ती है। पर अभी तक हम आस्ट्रेलियन व्यक्तियों की बातचीत अच्छी तरह समझ नहीं पाते। वे इतनी तीव्र गति से बोलते हैं कि कितने ही शब्दों का उच्चारण हमारी समझ में नहीं आता। कुछ आस्ट्रेलियन युवतियों से तो जिनसे

हमारी काफी घनिष्ठता हो गई है हमने धीरे-धीरे बातचीत करने के लिए कह दिया है और वे हमसे बोलते समय अपनी तेज रफ्तार को मुस्कराती हुई कम कर देती हैं। "बेटी" भी हमसे बातचीत करते समय धीरे बोलने का विशेष रूप से ध्यान रखती है।

अच्छा अब शेष अगले पत्र में।

तुम्हारी

चाची

८ जुलाई १९५१

प्रिय प्रभा,

तुमने अदन, पोर्टसईद और नेपल्स आदि बन्दरगाहों के बारे में, जहाँ-जहाँ हमारा जहाज ठहरा था, जानने की इच्छा प्रकट की है। इस पत्र में मैं इन्हीं सब बन्दरगाहों के संबंध में लिख रही हूँ।

अदन तक तो हमारा पच्चीस हजार टन का भारी भरकम जहाज अरब सागर की उत्ताल तरंगों पर कागज की नाव की तरह ऊँचे-नीचे उछलता रहा। चक्करों के कारण अनेक यात्रियों की बुरी दशा रही। सभी इस तरंगित सागर से ऊब गए थे और तटभूमि को देखने के लिए उत्सुक थे। पाँच दिन की निरन्तर जलयात्रा के पश्चात् हम अट्ठाइस तारीख की रात को बारह बजे अदन के बन्दरगाह पर पहुँचे। रात्रि के गहन अंधकार में सागर की निस्तब्धता को हमारे जहाज ने आकर भंग किया। समुद्र का हिलोरें मारता हुआ जल अब बिलकुल शान्त था, मानों वह अपने क्रोध पर पश्चाताप कर रहा हो। रात के सन्नाटे में प्रकृति का वह शान्त स्वरूप सचमुच बहुत ही सुन्दर तथा रमणीय लग रहा था।

जहाज सुबह नौ बजे ही यहाँ से रवाना हो जायगा—इस समाचार को पाकर सब यात्री आँख मलते हुए इस अँधेरे में ही अदन घूमने के लिए तैयार हो गए। सभी को जमीन पर चलने और अदन देखने की उत्सुकता थी। हमें तो पहले तुम्हारे बाबू ने मना किया कि अनजाने शहर में इतनी रात को घूमना उचित नहीं, पर हमने जिद करके उन्हें मना ही लिया। जहाज से सड़क तक पहुँचने में बीच के कुछ जल को पार करना पड़ता था अतः हमें पार पहुँचाने के लिए हमारे जहाज को देखते

ही स्टीम से चलती हुई अनेक नावें आ पहुँची। इनमें छोटी-छोटी कुर्सियाँ बिछी थीं और एक नाव में बीस-बीस व्यक्तियों के बैठने का स्थान था। देखते ही देखते अनेक यात्रियों की टोलियाँ इन नावों के द्वारा जल को पार करके तट भूमि पर आने लगीं। तेज रफ्तार से चलती हुई ये नावें बीस-बीस यात्रियों की एक टोली को क्षण भर में ही पार पहुँचा देतीं और फिर लौट कर प्रतीक्षा करती हुई अगली टोली को भर लातीं। रात के समय इधर से उधर चक्कर काटती हुई ये नावें एक मनोरम दृश्य का सृजन करती हुई-सी प्रतीत होती थीं। इस समय हमें काश्मीर की डल लेक पर इधर से उधर फुदकते हुए शिकारों की याद आने लगी। वहाँ भी हाउसबोट से पार जाने के लिए इन्हीं नावों की भाँति शिकारों के द्वारा बीच के जल को पार किया जाता है। उस समय हमें अपना जहाज कुछ-कुछ काश्मीर की हाउस बोट-सा मालूम पड़ने लगा। पर दोनों में बड़ा अन्तर था। एक पानी में बसे हुए छोटे से घर के समान था तो दूसरा सैकड़ों यात्रियों के बोझ को उठाकर विशाल समुद्रों को पार करता हुआ देश से विदेश पहुँचा देने वाला भारी जहाज। इन पार कराने वाली नावों ने एक-एक यात्री का सवा-सवा रुपया लिया जब कि काश्मीर में गरीबी के कारण छोटे-छोटे लड़के "बाबू जी शिकारा बाबू जी शिकारा" कहकर पीछे पड़ जाते हैं और एक पैसे में तीन-तीन व्यक्तियों को पार कर देते हैं।

पार पहुँच कर हमने अदन के बाजार जाने के लिए एक टैक्सी कर ली। अन्य यात्रियों में से कुछ तो वहीं घूमने लगे और कुछ टैक्सी करके बाजार पहुँचे। जब टैक्सी का ड्राइवर ऊँची-नीची पगडंडियों को पार करता हुआ रात के अँधेरे में सड़कों से आगे बढ़ा चला जा रहा था तो हमें उस पर सन्देह-सा होने लगा और हम सोचने लगे कि कहीं इधर-उधर भगाकर तो नहीं लिए जा रहा है। लगभग एक घंटा तक हम सशंकित और भयभीत मुद्रा में ही बैठे रहे। कुछ देर बाद जब बाजार की रोशनी दिखाई देने लगी तो हमारी यह शंका दूर हुई। जहाज के

पहुँचने का समाचार सुनकर अनेक दूकानदारों ने रात्रि में ही अपनी दूकानें खोल लीं और सारे बाजार में इन व्यक्तियों के पहुँच जाने से चहल-पहल-सी हो गई। यह दृश्य भी बड़ा रोमांटिक सा मालूम पड़ रहा था। रात्रि के गहन अन्धकार में सूनी सड़कों पर जहाँ अदन का कोई भी व्यक्ति दिखाई न पड़ता था हमारे जहाज के यात्री हाथ में बेग लटकाये बातें करते हुये बड़ी निश्चिंतता से इधर-उधर घूम कर चक्कर काट रहे थे। जिस समय सारा अदन निद्रा देवी की गोद में स्वप्नों की दुनियाँ में विचरण कर रहा था, हम लोग दूकानदारों से मोल-तोल करके अनेक चीजें खरीदने में व्यस्त थे। जहाज की जिन्दगी का यह रंगीन पहलू भी सदा याद रहेगा। यहाँ चीजें काफी सस्ती थीं। मोतियों की माला जो बम्बई में दस-दस रुपये की मिलती है यहाँ हमने तीन-तीन रुपये की चार जोड़ी तुम्हारे लिए और तुम्हारी सहेलियों शशी-किरण के लिए खरीदी हैं। गुलाबी रिबन भी चार गज तुम्हारे लिए खरीद लिया है और कुछ लेने की तो हिम्मत नहीं पड़ी क्योंकि अभी सारी यात्रा पार करनी है। कहीं रुपयों की कमी पड़ गई तो मुसीबत में फँस जायेंगे।

अदन का मुख्य बाजार घूमघाम कर लगभग चार बजे हम लोग अपने जहाज में वापस आ गए। पौ फटते ही यहाँ का दृश्य और भी सुहावना हो गया। प्रातःकाल का बाल रवि अदन के ऊँचे टीलों पर चमक रहा था और सामने छोटे-छोटे पहाड़ दिखाई दे रहे थे। उस सुन्दर दृश्य को देख कर सभी अपने-अपने कैमरे ले आए और ऊपर की डेक पर चढ़ कर खटाखट फोटो उतारने लगे। फोटो उतार कर शायद सब सोचते हों कि उन्होंने इस क्षणभंगुर निरन्तर परिवर्तन की गोद में खेलती हुई प्राकृतिक छटा को स्थायित्व प्रदान कर दिया है। रातभर जाग कर भी किसी की आँखों में नींद न थी। सबेरा होगया। हमारे जहाज को देख कर अनेक दूकानदार छोटी-छोटी नावों पर नाना प्रकार की वस्तुयें बेचने के लिए हमारे जहाज के समीप आ पहुँचे। ऊपर से खड़े-खड़े जहाज के यात्री मोल-भाव करने के पश्चात डोरी बाँध कर बेग या डलिया लटका देते थे और अपनी

वस्तु को डोरी के सहारे ऊपर घसीट लेते थे। उस वस्तु के दाम भी उसी बेग या डलिया में रख देते थे। इस प्रकार जहाज के चलने तक डोरी द्वारा खरीदने और बेचने का क्रम सुचारु रूप से चलता रहा। हमने कुछ खरीदा तो नहीं पर खड़े-खड़े यह रोचक दृश्य देखते रहे। अन्त में नौ का घंटा बजते ही जहाज के लंगर खोल दिये गए और हमारा जहाज अदन के किनारों को छोड़ता हुआ लालसागर में अविराम गति से आगे बढ़ने लगा।

गरजते हुए अरब सागर को पार करके अब हमारा जहाज लाल सागर के शान्त जल को पार करने में संलग्न था। गर्मी और उमस का स्थान अब शीतलता ने ले लिया था और मौसम अधिक सुन्दर हो गया था। अब हम जहाज के सभी व्यक्तियों से काफ़ी हिलमिल-से गए थे। एक दिन एक आस्ट्रेलियन युवती जोली को हमने अपनी साड़ी पहनाई और हमारा देखादेखी स्काउट लड़कों ने भी एक आस्ट्रेलियन युवक को अचकन तंग पैजामा और साफा पहनाया। उस दिन तो भारतीय लिबास में उन दोनों आस्ट्रेलियन युवक और युवती को देखने के लिए फ़र्स्ट क्लास तक के यात्री हमारी डैक पर आगए और हँसते-हँसते लोटपोट होने लगे। छः गज का साफा बेचारे आस्ट्रेलियन युवक से सँभाले नहीं सँभल रहा था और जरा-सा सिर हिलाने पर उसे इसके गिर जाने का भय हमेशा लगता था। वह बिलकुल सीधा बिना हिलेडुले मूर्ति की भाँति बैठने की कोशिश करता रहा। जब कभी जरा सा सिर हिलाने का मौका पड़ता तो दोनों हाथों से साफे को थामते हुए कहता—"अरे बहुत भारी है सिर हिलाने से अवश्य ही गिर पड़ेगा" और इस पर सब स्काउट लड़के ठहाका मार कर हँस पड़ते। जोला को साड़ी पहने देख मेरा या हमारे साथ साड़ी पहनने के लिये लालायित हुई आदि पर फिसलनी साड़ी और शरीर के मोटापे के कारण सँभाले रहने को बहुत कोशिश करने पर भी वह थोड़ी देर में ही उससे ऊब गई और उसे उतार डाला। उस दिन तो सारी शाम खूब ही चहलपहल रही। हमारे जहाज में सबने इन दोनों की अनेक फोटो उतारीं।

लाल सागर को पार करके हम स्वेज नहर के किनारों पर मंडराने लगे। नहर को देख जहाज के अनेक योरोपियन व्यक्ति खुशी से उछल रहे थे क्योंकि अब वे लम्बी यात्रा पार कर के अपने देश की सीमा तक पहुँच गए थे। अनन्त सागर के पश्चात् छोटी सी नहर के दाँए-बाँए दोनों ओर के मनोरम दृश्य सभी को हर्षित कर रहे थे। दूर-दूर तक फैले हुए बड़े बड़े मैदान, उन पर फर्राटे से चलती हुई मोटरें और घने वृक्षों के समूह मीलों दूर तक चले गये थे। अथाह सागर में रहते-रहते जिस जमीन के टुकड़े को देखने के लिए तरस गए थे वही जमीन अब बिल्कुल साफ अपने समीप दिखाई दे रही थी। किनारों पर छोटे-छोटे सुन्दर बँगले बने हुए थे और रेल की लाइन भी साफ दिखाई देरही थी। उसी समय एक रेल भी फर्राटे से दौड़ती हुई हमारे सामने से निकल गई। हमारा जहाज बहुत ही धीरे-धीरे सवा मील की रफ्तार से चल रहा था। कभी-कभी इस की इतनी कम रफ्तार को देख कर इसके ठहर जाने का आभास होता। हमें तो इस बीच में कई बार संदेह हुआ कि जहाज ठहर गया, पर जब बाहर आकर देखा तो यह अपनी धीमी चाल से चला जा रहा था। डेक पर खड़े सब व्यक्ति घंटों इन सुन्दर दृश्यों का आनन्द उठाते रहे।

रात्रि का दृश्य और भी सुन्दर था। इस समय कैनाल कुछ चौड़ा हो गई था और चारों ओर बिजली की रोशनियाँ जगमगा रही थीं। प्रातः काल नौ बजे हमारा जहाज स्वेज कैनाल में केवल छः घण्टे के लिए रुका। यहाँ से यात्रियों के लिए कैरो जाने का प्रबन्ध जहाज की ओर से किया गया था। डेढ़ सौ रुपये में सारा कैरो घुमा-फिरा कर अगले दिन पोर्ट सईद पर पहुंचा देने का प्रोग्राम था। खाना, पीना, रहना और टैक्सी आदि का किराया भी इसी डेढ़ सौ रुपए में सम्मिलित था। कैरो देखने वाले कितने ही यात्री यहाँ स्वेज कैनाल में उतर गए। पहले तो हमारा मन भी खूब ललचाया और सोचने लगे कि यह ऐतिहासिक स्थान भी देखते जायें। ऐसे अवसर रोज-रोज तो आते नहीं। यहाँ के पुराने पिरामिड देखने की तो हम बहुत ही उत्सुकता थी, पर फिर

जब रुपये का जोड़तोड़ बैठाया तो खर्च करने की हिम्मत न पड़ी। सीलोन वाली लड़की ने तो हमसे साथ चलने का बहुत ही आग्रह किया पर तुम्हारे बाबू नहीं माने। अगले दिन जब कैरो से लौटने वाले यात्रियों ने इसके विषय में विस्तार के साथ बातें बताईं और बहुत प्रशंसा की तो हम लोगों को भी पछतावा होने लगा। सोचा चले जाते तो अच्छा ही होता। पाँच सौ रुपये की ही तो बात थी। पर अब तो पछताना बेकार था मन मार कर बैठ गए।

अगले दिन आठ बजे पोर्ट सईद आने वाला था। जहाज के सब व्यक्तियों को किसी पोर्ट के आने की ऐसी खुशी होती है जैसे लम्बी प्रतीक्षा के पश्चात् कोई अपनी मनचाही वस्तु को प्राप्त करके प्रसन्न होता है। सुबह चार बजे से ही सब यात्री नहा धोकर तैयार होकर बैठे थे कि पोर्टसईद आते ही वे घूमने के लिए निकल जायेंगे। मिस्र की भूमि पर पहुँच कर सभी यात्री बहुत प्रसन्न थे। अदन की भाँति हमारे जहाज को दूर से देखते ही सैंकड़ों की संख्या में इधर-उधर से फुदकती हुई नावें नानाप्रकार का सामान लिए आ पहुँचीं और उसी प्रकार डोरी के द्वारा चीजों की खरीददारी शुरू हो गई। कितने ही दूकानदार जहाज में ही आ गए और डेक पर अपनी दूकानें सजा लीं। यहाँ के इजिप्शन काम के चमड़े के बेग और कुशन बहुत प्रसिद्ध हैं। एक कुशन और दो बेग हमने भी खरीदे हैं।

नाश्ता करने के बाद अपने-अपने पासपोर्ट पर मोहरें लगवा कर यात्रियों के झुंड के झुंड पोर्टसईद की सैर करने चल दिए। लगभग सारा जहाज खाली हो गया। हमभी कुछ स्काउट लड़कों के साथ आसपास के बाजार देखने के लिए निकल पड़े। हमें साड़ी की पोशाक में देख यहाँ के व्यक्ति कौतूहल भरी दृष्टि से देखने लगे। राह चलते छोटे-छोटे बच्चे अपनी भाषा से हमारे विषय में पूछ रहे थे। मिस्री मुसलमान औरतें पर्दा रखती हैं, पर उनका आधा मुंह जाली से ढका रहता है और ऊपर का आधा हिस्सा खुला। पोर्ट सईद अन्तर्राष्ट्रीय

नगर है। यह अफ्रीका के उत्तर पूर्वी छोर पर बसा हुआ है, लेकिन इसके उत्तर में भूमध्य सागर के पहले तट पर योरोप है। एशिया तो यहाँ अफ्रीका में मिल गया है। इसको ही बाधा समझ कर स्वेज नहर बनाई गई है जिससे भारतीय महासागर से भूमध्य सागर को मिलाया जा सके। पोर्ट सईद हमें बहुत पसन्द आया और यहाँ का इजिप्शन आर्ट भी।

पोर्टसईद को पार करके हमारा जहाज मेडीटरेनियन के विशाल सागर में आ पहुँचा। समुद्र की फिर वही पुरानी गर्जना प्रारम्भ हो गयी। मेडीटरेनियन सागर का जल गहरे नीले रंग का था और यह अरब सागर की ही भाँति अशांत अवस्था में हिलोर मार रहा था। जहाज भी डगमग करता हुआ आगे बढ़ रहा था। यहाँ भी हमें एक-आध दिन चक्करों की खुमारी रही, पर जल्द ही ठीक हो गए। हम तो डरने लगे थे कि कहीं पहले जैसी अवस्था न हो जाय।

अस्तु, हमारे जहाज ने न जाने किस मनहूस घड़ी में यात्रा प्रारम्भ की थी कि महीना भर में ही पाँच व्यक्तियों की मृत्यु हो गई। एक टूरिस्ट क्लास का आस्ट्रेलियन व्यक्ति सबसे ऊपर की डेक पर मुंडेर का सहारा लिए खड़ा था। खड़े-खड़े निद्रावस्था में हो गया और अचानक ही नीचे समुद्र की गोद में जा पहुंचा। संध्या के झुटपुटे में केवल गरजते हुए समुद्र ने ही उसकी अन्त्येष्टि क्रिया की। सब व्यक्तियों को अगले दिन यह समाचार मालूम हुआ। उस युवक की अवस्था केवल २५ वर्ष की थी। यह घटना सालोन के आसपास घटित हुई। हमें तो 'घेटी' से उसकी मृत्यु का समाचार मिला। उस दिन से तो डर के मारे हमने डेक की मुंडेर पर खड़ा होना ही छोड़ दिया। दूसरी दुर्घटना अदन में हुई। मैं तुम्हें लिख चुकी हूँ कि हमारा जहाज रात के बारह बजे अदन पहुंचा था और इस रात में ही सब यात्री अदन घूमने के लिए चल दिए थे। अंधेरे में कुछ गुण्डों ने दो व्यक्तियों को बुरी तरह से घायल कर डाला और उनके पास जो रुपया पैसा था सब छीन लिया। उन दोनों व्यक्तियों का कहीं पता न चला। स्वेज नहर को पार करते समय यह खबर मिली कि फर्स्ट

क्लास के एक यात्री को कुर्सी पर बैठे-बैठे हार्टफेल हो गया। उस बेचारे ने जाने किस अशुभ घड़ीमें यात्रा आरम्भ की थी जो लौटकर घरवालों का मुँह तक भी न देख पाया। वायरलेस के द्वारा उसके घर खबर भिजवाई गई और पोर्ट सईद में उसकी लाश को पुलिस को सौंप दिया गया, क्योंकि जहाज में मृत व्यक्ति को एक दिन से अधिक रखने की आज्ञा नहीं है। पोर्टसईद में ही उसके घर वालों ने आकर उसकी लाश को देखा होगा। पोर्टसईद में चलते-चलते हमारे जहाज ने एक हत्या और कर डाली। गोदाम में सामान की भारी-भारी गाँठों को बड़े-बड़े लोहे के तराजुओं में रखकर पोर्टसईद पर उतारा जा रहा था। एक तराजू में आठ या दस गाँठें होती थीं। अचानक तराजू की जंजीरें बीच में ही खुल पड़ीं और सब गाँठें एक मजदूर पर आ गिरीं। बेचारा मजदूर वहीं ढेर हो गया। हमने अपनी आँखों से उसकी लाश को उठते हुए देखा। क्षण भर पहले काम करता हुआ व्यक्ति पल भर में ही मुर्दा बन गया।

इस प्रकार पाँच हत्याओं का पाप लिए हमारा जहाज आगे बढ़ रहा है। मृत्यु के इन समाचारों से हम भयभीत से हो गए हैं और सही सलामत योरोप पहुँच जाने की प्रार्थना करते हैं। तुम भी इन समाचारों को पढ़ कर डर-सी जाओगी और योरोप से हमारे कुशल क्षेम के पत्र का बेसब्री से इन्तजार करने लगोगी। हम जिनेवा पहुँचते ही तुम्हें पत्र डालेंगे। चिन्ता न करना।

जहाज में हमें सबसे अधिक यहाँ की एक छोटी-सी आस्ट्रेलियन बालिका ने प्रभावित किया है। इसकी उम्र [illegible] वर्ष से अधिक नहीं है। यह बालिका एक कुशल चित्रकार है और बचपन से ही इसे चित्रकारी का शौक रहा है। जहाज में कुछ भी क्यों न हो, यह बालिका सदा अपनी चित्रकारी में निमग्न रहती है। खेलने-कूदने का भी इसे ज्यादा शौक नहीं। कभी तालाब में तैरते या अन्य कोई खेल खेलते भी इसे हमने नहीं देखा। केवल खाने या [illegible] करने के लिए ही जाती है

एक आस्ट्रेलियन लड़का भी जो लगभग इसी की उम्र का है, सदा उसके साथ रहता है। ये दोनों ही चित्रकार हैं और दोनों का आपस में अगाध प्रेम है, दोनों को एक दूसरे से कभी अलग बैठे नहीं देखा। सारे दिन के व्यस्त कामों को निपटाने के बाद जरा देर के लिए ऊपर डेक पर आकर बैठ जाते हैं। दोनों ही बहुत शर्मीले-से हैं और बहुत कम बोलते हैं। इतनी कम उम्र में ऐसी गम्भीरता देखकर हम बहुत ही प्रभावित हुए। दोनों ने अपने हाथ का बनाया हुआ एक सुन्दर चित्र स्काउट प्रतिनिधियों को स्मृति-चिन्ह के रूप में भेंट किया है। कल हमने इन दोनों की तीन-चार फोटो उतारी हैं। अच्छी आयेंगी तो अगले पत्र में तुम्हें भेजेंगे।

जहाज की इस जिन्दगी से जब आँख उठा कर नीचे की ओर देखते हैं तो वही हाहाकार करता हुआ सागर, फेन उगलती हुई चंचल तरंगें, डुबकियाँ लगाती हुई छोटी-बड़ी मछलियाँ और इन सबको चीर कर अविराम गति से आगे बढ़ता हुआ हमारा जहाज। घंटों खड़े-खड़े इस सुन्दर दृश्य को देखते हुए भी जी नहीं भरता।

दिन बीतते देर नहीं लगती आज जहाज में हम सब यात्रियों का आखिरी दिन था। कल सब एक दूसरे से अलग हो जायेंगे—इस भावना ने सभी को द्रवित कर दिया था। इतने दिन साथ रहते-रहते सबसे कुछ ऐसी आत्मीयता-सी हो गई थी कि उनका बिछोह परिवार के व्यक्तियों का-सा बिछोह जान पड़ रहा था। इस दिन सब आस्ट्रेलियन और स्काउट प्रतिनिधि डेक पर एकत्र हुए और एक दूसरे के प्रति अपनी शुभ कामनायें प्रकट कीं। कितनी ही फोटो उतारी गईं और अनेक प्रकार के जातीय गानों से सारा जहाज प्रतिध्वनित हो उठा। इस प्रकार जहाज का यह आखिरी दिन सबसे अलग हो जाने की मार्मिक भावनाओं को लिए हुए था। "बेटी" बार-बार हमारे केबिन में आकर हमें प्यार करके अपनी स्नेहमयी भावनाओं को प्रकट कर रही थी। उसका जी भरा हुआ था और हमें छोड़ने का बड़ा दुःख हो रहा था। वह दिन भर हमारे साथ रही। कभी केक लाकर हमें खिलाती और कभी चाकलेट की टुकड़ी मुँह में डाल देती।

हमारी हरी चूड़ियों के उपहार को देखकर वह बहुत प्रसन्न हुई और उसने वह चूड़ियाँ न्यूज़ीलैंड ले जाने के लिये सम्भाल कर रख ली हैं कि कहीं पहनने से टूट न जायँ। इसी दिन शाम को हमारा जहाज नेपल्स की खूबसूरत बन्दरगाह पर आकर रुका। यहाँ जहाज को केवल छः घंटे ही रुकना था अतः हमें जहाज से उतर कर नेपल्स घूमने की आज्ञा नहीं मिली जब कि हम इसे देखने का बेसब्री से इन्तजार कर रहे थे। खैर, मन मार कर रह जाना पड़ा। नेपल्स में जहाज रुकते ही आस्ट्रेलियन प्रतिनिधियों ने किसी कारणवश अगले दिन जेनोआ में न उतर कर नेपल्स में ही उतरने का निश्चय किया। देखते ही देखते सब अपना अपना बोरिया बिस्तर बाँध कर तैयार हो गए और बिना किसी कुली आदि की प्रतीक्षा किये दोनों हाथों में चमड़े के ट्रंक लटकाये नीचे उतर गए। सब ने हमसे बारी-बारी से हाथ मिलाए और बर्लिन सम्मेलन में मिलने की आशा प्रकट की। आस्ट्रिया जाने वाले स्काउट प्रतिनिधि भी यहीं उतर गए। फिर रुमाल हिलाते हुए नीचे खड़े इन व्यक्तियों ने हमसे आखिरी विदा ली और हमारा जहाज जेनोआ की ओर प्रयाण करने लगा। अन्त में रहे सहे यात्रियों का बोझ ढोकर हमारे जहाज ने जेनोआ के विशाल बन्दरगाह पर पहुँच दोपहर को ३ बजे अपनी लम्बी जल-यात्रा समाप्त की।

अब जेनोआ के विषय में अगले पत्र में लिखूँगी। उम्मीद है तुम स्वस्थ तथा सकुशल होगी।

जेनोआ (इटली)

११ जुलाई, १६५१

प्रभा रानी,

यह जेनोआ है, इटली का विशाल बन्दरगाह। चारों ओर छोटी-छोटी खूबसूरत पहाड़ियों से घिरा होने के कारण यह प्राकृतिक सौन्दर्य से भी पूर्ण है। दूर-दूर तक हरे-भरे मैदानों के झुंड के झुंड चले गए हैं। चौड़ी-चौड़ी सड़कों पर फर्राटे से दौड़ती हुई बसों, मोटरों तथा टैक्सियों की दौड़ सी लगती हुई प्रतीत होती है। इसी बन्दरगाह पर आकर हमारे जहाज ने सात जुलाई को दोपहर को तीन बजे अपनी लम्बी जल-यात्रा समाप्त की। योरोप की इस नई दुनियाँ के नवीन वायुमंडल में प्रवेश कर नए अपरिचित व्यक्तियों के बीच अपने को पा अजाने पथों पर चलते हुए हम अपने को अजनबी सा अनुभव कर रहे थे। यहाँ के इटैलियन व्यक्तियों के लिए भी हम अपनी वेष-भूषा और साँवले रंग के कारण जिज्ञासा और कुतूहल की वस्तु बन गए थे। राह चलते स्त्री, पुरुष और बच्चे हमें बड़े गौर से उत्सुकता पूर्ण दृष्टि से देखते हुए हमारे विषय में परस्पर बातचीत करने लगते और हमें किसी गर्म देश के निवासी होने का अनुमान करते। कुछ निम्न वर्ग के व्यक्तियों को तो हमारे बहुत समीप आकर हमारे चेहरों पर नजर गड़ा कर देखने में भी हिचक न मालूम होती थी। इटली के ऐसे ही वातावरण के बीच हम जहाज की रस्मों को पूरी कर कस्टम हाउस पर आए। कस्टम हाउस के अधिकारियों ने हमारे सब सामान की खूब जाँच पड़ताल की। हर सन्दूक को ऊपर से नीचे तक एक-एक कपड़ा झाड़ कर देख लेने के बाद ही शायद उनकी शंका दूर हो सकी। पूरे तीन घंटे की तपस्या के पश्चात् जब हमें इन कस्टम हाउस वालों से छुटकारा मिला तो किसी होटल में ठहरने के लिए पूछताछ करने लगे। यहाँ की भाषा से पूर्ण अनभिज्ञ होने के कारण अपनी बात को

समझाने के लिये हमें जिस कठिनाई का सामना करना पड़ता उसका यदि किंचित मात्र भी अनुमान पहले कर लिया होता तो थोड़ी बहुत फ्रेंच भाषा तो अवश्य ही सीख ली होती। अब तो केवल संकेत मात्र ही हमारे भावों की मूक अभिव्यक्ति थी। इसमें भी जब कभी अनेक प्रयत्न करने पर भी अपनी बात को समझाने में सफलता न मिलती तो सचमुच खीझ उठते थे। पहले तो हमने अपने कुछ पौंडों को 'लीरा' (इटैलियन सिक्का) में बदलवाया। इसका हिसाब किताब भी बड़ा विचित्र-सा लगा। एक आयस्क्रीम खरीदी तो पिचत्तर लीरा देने पड़े। इसका इतना गिरा हुआ मूल्य देखने पर वहाँ मुद्राप्रसार (Inflasion) का अनुमान सहज ही में किया जा सकता है।

होटल महँगा होने के कारण हमने यहाँ के एक यूथ कैम्प में ठहरने का निश्चय किया जो शहर से लगभग पचीस मील की दूरी पर स्थित है। इस समय रात के सात बज चुके थे और चाय कॉफी आदि कुछ भी न पीने के कारण सबके पेट में यद्यपि चूहे कूद रहे थे, फिर भी कैम्प पहुँच कर ही खाने का निश्चय किया गया क्योंकि यहाँ रुकने से देर होने की सम्भावना थी। लगभग डेढ़ घण्टे बस का सफर तय करके जब नीचे उतरे तो मालूम हुआ कि अभी कैम्प तक पहुँचने के लिए दो मील का रास्ता पैदल चल कर पार करना है, बस वहाँ तक नहीं जाती। अब तो बड़ी मुसीबत हुई। एक तो दिन भर की थकान तथा भूख-प्यास के कारण पहले ही शक्तिहीन से हो रहे थे उस पर दो मील पैदल चलना। इतना ही नहीं अपना सारा सामान भी खुद ही ढोना था। हिन्दुस्तान की भाँति यहाँ बैल का सा बोझा ढोने वाले कुली नहीं मिलते। पहियेदार गाड़ी लिए नीली वर्दी वाले "पोर्टर" होते हैं जो सामान को गाड़ी के द्वारा निश्चित स्थान पर पहुँचा देते हैं। पर इनकी संख्या भी बहुत कम होती है। कुछ दूर जाकर काफी खोज करने पर ही इनका मिलना सम्भव होता है। यहाँ बस स्टैंड पर भला ये "पोर्टर" कहाँ। अपने शरीर के साथ अपना सामान भी ढोना था। और फिर हमारा सामान भी तो थोड़ा बहुत न था। पूरे

पाँच टीन के सन्दूक, तीन बड़े और दो छोटे, ऊपर तक ठसाठस भरे हुए, काफी वजनदार। यहाँ के जीवन से अनभिज्ञ होने के कारण हम बहुत सा अनावश्यक सामान भर लाये थे जिसकी यहाँ कतई आवश्यकता न थी। अब उसका फल भुगतना पड़ा। दो-दो व्यक्तियों ने दोनों किनारों से पकड़ कर इन टीन के वजनदार बक्सों को उठाया और दूसरे हाथ में अटैची लेकर कैम्प-यात्रा प्रारम्भ की। थोड़ी दूर जाकर थक कर हम सड़क के किनारे बैठ जाते और तनिक देर सुस्ता कर फिर यात्रा प्रारम्भ कर देते। मेरा और तुम्हारी मम्मी का तो बुरा हाल था। जीवन में आज इतना बोझ उठा कर भूखी प्यासी अवस्था में दो मील का मार्ग पैदल पार करने का हमारे लिए यह पहला अवसर था। हम तो योरोप की रंगीन दुनियाँ का सुन्दर काल्पनिक चित्र लेकर चले थे पर यहाँ दूसरी ही नौबत थी। जैसे तैसे बीच बीच में बैठ कर थकान उतारते हुए लगभग रात के साढ़े नौ बजे जब हम एक छोटी सी पहाड़ी पर पहुँचे तो मालूम हुआ कि अभी कैम्प तक पहुँचने के लिए आधा मील की छोटी सी साँकरी पगडंडी को पार करना है। हम सभी के होश हवाश गुम थे और सोच रहे थे कि इतने सामान के साथ इस ऊबड़ खाबड़ पगडंडी को कैसे पार किया जायगा। जरा सा पांव फिसलते ही यह योरोप यात्रा जीवन की अंतिम यात्रा बन जायगी। इतने में ही ऊपर से एक बड़ा भारी लोहे का तराजू सा बिजली से चलता हुआ गड़गड़ाहट की ध्वनि करके नीचे आता हुआ दिखाई दिया। यह हमारे समान को ऊपर पहुंचाने के लिए आया है यह जान कर बहुत राहत मिली। सामान से छुटकारा पाकर पगडंडी को पार करके कैम्प में पहुंचते ही हम वहाँ के मैदान में इस प्रकार निर्जीव सी अवस्था में लेट गये मानों हमारी शक्ति का आखिरी कण समाप्त होने वाला है। लेटे लेटे हम अपनी अनुभव हीनता पर दुख प्रकट कर रहे थे और सोच रहे थे कि अगर कैम्प तक पहुंचने के लिए इन कठिनाइयों का अनुमान लगाया होता तो वहीं किसी पास के होटल में ठहर गये होते। रुपए की बचत कहाँ और पूरी कर लेते। पर अभी यहीं तक इन कठिनाइयों

का अन्त न था। इतनी दूर का सफर पैदल पार करने के कारण गला सूख गया था और बेहद प्यास लग रही थी। हमने वहाँ की इटैलियन संचालिका से पानी पीने की इच्छा प्रकट की। पर इंगलिश न जानने के कारण वह संचालिका हमारा आशय न समझ सकी। हमने संकेतों से समझाने का प्रयास किया पर वह भी निष्फल। आखिर हिम्मत बाँध कर तुम्हारी मम्मी उठीं और खोजती हुई रसोई घर के पास पहुंचकर वहाँ लगे हुए पंप की ओर इशारा करके जब अपना आशय समझाया तो कहीं पानी नसीब हुआ। भाषा की अनभिज्ञता के कारण किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है इसका अनुभव आज जीवन में पहली बार कर रहे थे। इसके पहले ऐसे अनुभव कभी न हुए थे। भोजन भी वहाँ का इटैलियन था। पनीर, मकरोनी, मास के उबले हुए टुकड़े, सूप और डबल रोटी ही इस के मुख्य पदार्थ थे जो हमें बिल्कुल पसंद नहीं। अब तक जहाज में भारतीय भोजन मिलते रहनेके कारण इस अभाव को अनुभव न किया था अतः इतनी भूख में इस इटैलियन भोजन को देख कर जी जल जाना स्वाभाविक ही था। जैसे-तैसे सूप के साथ कुछ डबल रोटी के टुकड़े खाकर हम सोने के लिए चले गए। रात भर पेट में चूहे कूदते रहे और घर की अरहर की दाल और सोंधी रोटी याद आती रही। इसके बाद एक और मुसीबत आई। दूसरे दिन से जुकाम खाँसी और बुखार, इन तीनों नेतुम्हारी मम्मी को आ घेरा। एक तो विदेश दूसरे अपरिचित भाषा, तीसरे शहर सेपचास मील दूर ऊँचे टीले के कैम्प पर लटके हुए जहाँ केवल छुट्टीवाले दिन कुछ लोग पिकनिक करने ही आते हैं और ऊपर से यह बीमारी। अब तो भगवान ही मालिक था। यहाँ डाक्टर, वैद्य का कोई पता ठिकाना नहीं। जब बुखार का प्रकोप निरन्तर दो दिन तक जारी रहा और तुम्हारी मम्मी कुछ न खाने के कारण कमजोर भी होने लगीं तो तुम्हारे बाबू कुछ घबड़ाये और न जाने कहाँ कहाँ के चक्कर काट कर परेशान होते हुए कहीं से एक बूढ़े इटैलियन डाक्टर को पकड़ ही लाए। डाक्टर महोदय इटैलियन

भाषा के अतिरिक्त अन्य सभी भाषाओं से नितान्त अनभिज्ञ थे। हमारे कैम्प में कुछ व्यक्ति अंग्रेजी भाषा-भाषी थे और किसी को अधकचरी सी फ्रेंच आती थी। इटैलियन भाषा हममें से कोई भी नहीं जानता था। फिर वही भाषा की मुसीबत सामने आई। रोगी के कहाँ दर्द है, कैसे बुखार आया आदि सब हाल बताने का हमने बहुतेरा प्रयत्न किया पर सब बेकार। बहुत ही हास्यास्पद-सा दृश्य था उस समय का। एक ओर डा० साहब अपनी इटैलियन भाषा में बोले चले जा रहे थे, दूसरी ओर कोई इंगलिश, कोई, फ्रेंच और कोई संकेतों से समझाने की चेष्टा कर रहा था। पर डा० साहब की बुद्धि काम नहीं दे रही थी। इस समय तो हमारे अनेक संकेतों ने भी कुछ काम न दिया। अपने को ऐसी परिस्थिति में देख मुझे उस आदि युग की याद आ गई जब भाषा का आविर्भाव न हुआ था और केवल संकेतों के द्वारा भावों को व्यक्त किया जाता था। मैं सोच रही थी वे कौन से संकेत होते होंगे जिनके सहारे भावों का आदान-प्रदान सुगमता से हो जाता था। इस समय तो ये संकेत भी हमारा साथ न दे रहे थे। अन्त में डा० साहब ने रोगी की नब्ज आदि से ही बीमारी का अनुमान लगा कर पैन्सलिन का इंजैक्शन कोन्च दिया और कुछ गोलियां खाने को दीं। गनीमत यह हुई कि तीन दिन में ही तुम्हारी मम्मी ठीक हो गई और हमने इस विकट परिस्थिति से छुटकारा पाया। भाषा की इसी अनभिज्ञता के कारण हमारे कैम्प के एक अंग्रेजी भाषा-भाषी व्यक्ति को अंडे की आवश्यकता पड़ने पर मुर्गा बनने की नौबत आ पहुंची और उसने कुकड़ू कूँ करके अपने आशय को समझाया। इस पर तो कैम्प के सभी व्यक्ति हँसते-हँसते लोट पोट हो गए।

इस प्रकार जैनोआ में जहां हमारी वाणी मूक हो गई थी और भाषा का स्थान संकेतों ने ले लिया था, हम जैसे-तैसे चार दिन व्यतीत कर लंदन की ओर चल दिए क्योंकि बर्लिन सम्मेलन जाने वाला पूरा भारतीय प्रतिनिधि मंडल यहीं एकत्र हुआ था और यहीं से बर्लिन जाने का

आयोजन यहां की युवक कमेटी के द्वारा किया गया था। विदेश-यात्रा का यह प्रथम अनुभव भी जीवन भर याद रहेगा। अगला पत्र लंदन पहुँच कर लिखूँगी।

प्यार

तुम्हारी
चाची.

म्योर होटल,

लन्दन

१६ जुलाई १९५१

लन्दन देखने की अभिलाषा और सुन्दर कल्पनाओं को लिए हमने जेनाआ के कैम्प को जहाँ बीमारी, भाषा, भोजन आदि के अनेक कटु अनुभव करने पड़े थे प्रणाम किया और मन ही मन इन विकट परिस्थितियों से छुटकारा पाने के लिये भगवान को धन्यवाद देते हुये लन्दन की ओर चले। जेनोआ की इस विदाई में दुख या विछोह की कारुणिक भावनायें जो अक्सर किसी शहर या वहाँ के व्यक्तियों को छोड़ने में होती हैं, न थीं अपितु सुख और सन्तोष की वह अनुभूति थी जो किसी कठिनाई से छुटकारा पाने के बाद होती है। फ्रांस, डोवर और इंगलिश चैनल को पार करके लगभग डेढ़ दिन की यात्रा के पश्चात् जैसे ही हमने इंगलैण्ड की वैभवपूर्ण राजधानी और अपनी रंगीन कल्पनाओं के केन्द्र लन्दन में पदार्पण किया वैसे ही हमने अनुभव किया कि यहाँ की भाषा और यहाँ के व्यक्तियों से मानो हम चिर परिचित हों। होते भी क्यों न? अंग्रेजी बोलते हुए गोरी चमड़ी वाले जिस महामहिम ब्रिटिश साम्राज्य में अंग्रेजों की गुलामी करके "जी हजूरी" बजाते हुए हमने डेढ़ सौ वर्ष से अधिक व्यतीत कर दिये और जिनकी भाषा सीखने में हमने अपनी आधी से अधिक आयु और मस्तिष्क की सम्पूर्ण शक्तियाँ लगा दीं, उन्हीं के देश में पहुँच कर अपने को अपरिचित सा अनुभव न करना हमारे लिए स्वाभाविक ही था। अपनी मातृभाषा सी इनकी अंग्रेजी भाषा जान पड़ी और पुरानी जान पहिचान के से व्यक्ति। नव नव भावनाओं से आलोड़ित होता हुआ हृदय लन्दन की इस रम्य भूमि में पहुँच नए नए अनुभव प्राप्त करने के लिए चल दिया।

यूँ तो लन्दन पेरिस और स्विटजरलैंड की तुलना में कहीं नहीं ठहरता। वहाँ ऐसा कोई भी विशेष दर्शनीय स्थान नहीं जिसने हृदय की रागात्मक वृत्ति को उभारा हो। यहाँ का वातावरण भी ऐसा नहीं जान पड़ा जिसने मन और मस्तिष्क पर अपनी अमिट छाप छोड़ दी हो जैसा कि रूस और चीन से लौटने वाले व्यक्तियों पर देखी जाती है। यहाँ अमीर और गरीब का भेद, भिखमंगे, वेश्यावृत्ति, धन लोलुपता, पूँजीवादी मनोवृत्ति, शोषण और श्रेणी संघर्ष आदि सभी बातें देखने में आईं। कहने को यहाँ मजदूरों की सोशलिस्ट गवर्नमेंट शासन कर रही है पर अब भी वैयक्तिक सम्पत्ति पवित्र समझी जाती है। युद्ध के समय यहाँ बड़े जोर की बम वर्षा हुई इसीलिए कितने ही मकान ध्वस्त हो गये थे। अब भी यहाँ काले रंग से पुती हुई ऊँची ऊँची बिल्डिंगें कई स्थानों पर देखने को मिलती हैं। रूस और अन्य पूर्वी जनवादी देशों की भाँति यहाँ की सरकार का ध्यान ध्वस्त हुए मकानों के नव निर्माण की ओर उतना नहीं गया। सब उसी अवस्था में पड़े हैं। वस्तुतः द्वितीय महायुद्ध ने इंगलैंड को कंगाल और अमेरिका का मोहताज सा बना दिया है। इसीलिए युद्ध के आठ वर्ष बाद भी अन्डे, मांस और चाकलेट पर राशन चल रहा है।

पर लन्दन की इन सब खामियों के बावजूद भी हमें कुछ ऐसा सा जान पड़ा कि इस समय इसका आकर्षण अपनी चरमावस्था पर पहुँचा हुआ है। एक तो गर्मी का सुन्दर मौसम दूसरे छुट्टियों के दिन, तीसरे ब्रिटेन का उत्सव जिसने न केवल इंगलैण्ड में बल्कि सारे योरोप में एक धूम-सी मचा दी है। कटकटे हुए शीत से छुटकारा पा खिली हुई धूप को देखकर यहाँ के व्यक्ति बहुत खुश होते हैं और घरनों कपड़े उतार कर कड़ी धूप में बैठे रहते हैं। कितनों के शरीर पर तो इस तेज धूप के कारण जले के से भूरे रंग के निशान पड़ जाते हैं जिसे वे स्वास्थ्य का चिन्ह मानते हैं। कल कुछ राह चलती स्त्रियाँ गर्मी के इस सुहावने मौसम को देख उमंग और आह्लाद से पूर्ण होकर प्रसन्नातिरेक के कारण हमारी साड़ी का पल्ला पकड़ कर पूछने लगीं: "Is it not a lovely weather to-day?" (क्या

यह सुन्दर मौसम नहीं है) हमारा यह सौभाग्य ही समझो कि ऐसे अनुकूल वातावरण में जब कि लन्दन का सौंदर्य अपनी चरमावस्था पर था, हमने इसकी भूमि पर पदार्पण किया।

पहले तो इरादा था कि किसी लैंड-लेडी के मकान में ठहरेंगे क्योंकि वह होटल की अपेक्षा काफी सस्ता पड़ता है पर इसके ढूँढने में कठिनाई होती देख फिलहाल हमने म्योर होटल में ही ठहरने का निश्चय किया। सबसे पहले यहाँ आकर हमने लन्दन की 'ट्यूब' (भूगर्भ रेलवे) का जिसे 'मेट्रो' भी कहते हैं, आनन्द लिया। आबादी बहुत घनी होने के कारण तथा जनता को यातायात की सुविधा प्रदान करने के लिए ही मानव की विराट कल्पना के आधार पर इस ट्यूब की सृष्टि हुई। इसीलिए ऊपर चलने वाली बस और टैक्सियों में धक्कम धुक्की या इनकी प्रतीक्षा करने वाली लम्बी लाइनें नहीं दिखाई पड़ती। ये ट्यूब तीन तीन मिनट के पश्चात् बड़ी तेजी से तीव्र ध्वनि करती हुई आती हैं और केवल डेढ़ मिनट ठहर कर चल देती है। स्थान-स्थान पर ट्यूब-स्टेशन बने हुए हैं। लन्दन के चारों कोनों से प्रातः पाँच बजे से लेकर रात्रि के दो बजे तक इनका चलना जारी रहता है। इसका किराया भी ऊपर चलने वाली बसों और टैक्सियों की अपेक्षा बहुत कम होता है। कौनसी रेल, किस समय किस प्लेट फार्म पर किस लाइन से कहाँ जाएगी इसकी जानकारी के लिए हमें परेशान नहीं होना पड़ा। सामने ही दीवार पर सब रेलों के आने जाने का नक्शा टंगा है जिसमें भिन्न-भिन्न रंगों की रेखाओं के द्वारा सब बातों को स्पष्ट कर दिया गया है। साधारण बुद्धि वाला व्यक्ति भी इस नक्शे की सहायता से अपनी लाइन सुगमता से खोज सकता है। नक्शे के अतिरिक्त सामने एक बोर्ड पर ट्यूब के आने से पहले उस का नाम लिखा हुआ आ जाता है जिससे गलत ट्यूब में बैठ जाने की शंका नहीं रह जाती। दो दिन में ही हमने इसके सब नियम समझ लिए और अब तो सैकड़ों मील का चक्कर बिना किसी असुविधा के इसी ट्यूब में लगा आते हैं। इन ट्यूब स्टेशनों पर चढ़ने और उतरने की बिजली से चलती हुई

सीढ़ियों पर खड़े होते हुए ही सरसराते हुए, बिना हाथ पाँव डुलाए नीचे आ पहुँचते हैं। प्रारम्भ में पहली बार उतरते समय तो ऐसा लगा मानों पाताल लोक में आ पहुँचे हों या परियों की किसी अन्तःपुरी में। खड़खड़ाती हुई रेलों का आना जाना, मुसाफिरों की भीड़, दिवालों पर लगे आकर्षक विज्ञापनों की भरमार और भूल भुलैया के से रास्ते, ऐसी दुनियाँ में पहुंच क्षण भर के लिये किसी रहस्यमयी अन्तःपुरी का सा आभास हो जाना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। ट्यूब के दरवाजे भी बिजली के द्वारा ट्यूब के रुकते ही स्वयं खुल कर समय की पाबन्दी रखते हुए दो मिनट बाद स्वयं ही बन्द हो जाते हैं और रेल चल देती है। परसों जरा सी असावधानी हो जाने के कारण मेरी साड़ी का पल्ला इन दरवाजों के बीच में ही अटक गया और अगला स्टेशन आने तक मुझे वहीं दरवाजों के पास खड़ी रहकर सजा भुगतनी पड़ी। गनीमत यह हुई कि साड़ी का पल्ला ही फँसा था ऐसे दरवाजों में हाथ पैर फँसते क्या देर लगती है। तीन चार दिन हुए हम लोग "हैरी पोलेट" (यहाँ की कम्युनिस्ट पार्टी के जनरल सेक्रेटरी) की मीटिंग से काफी रात गए लौट रहे थे, समीप के ट्यूब स्टेशन पर पहुँचे, सरसराती हुई गाड़ी आई, दरवाजे खुले, इंतजार करते हुए व्यक्तियों की भीड़ शीघ्रता से अन्दर जाने लगी। तुम्हारी मम्मी और तुम्हारे बाबू भीड़ में आगे होने के कारण गाड़ी में पहुँच गए। मेरे चढ़ने की बारी आते ही दरवाजे बन्द हो गए और रेल चल दी। मैं अकेली प्लेटफार्म पर खड़ी हुई इधर-उधर विज्ञापनों को देख अपनी झेंप मिटाने का प्रयास करने लगी। पास में न तो टिकट ही था और न एक पेनी ही। अतः वहीं बेंच पर बैठकर इंतजार करना उचित समझा। लगभग एक घंटे के पश्चात् वे दोनों दूसरी ट्यूब से लौट कर मुझे लेने के लिये आए। ट्यूब के आने जाने में समय की ऐसी कड़ी पाबन्दी अन्यत्र बहुत कम देखने में आती है।

यहाँ स्थान-स्थान पर पब्लिक टेलीफोन लगे हैं। दो पेनी डालो, नम्बर मिलाओ और जहाँ भी चाहो बातचीत कर लो। टेलीफोन बिना

मिलें या एंग्रेज होने पर हमारी ये दो पैनी व्यर्थ नहीं जाती, बटन के दबाते ही वापिस आ जाती हैं। मानव की इस नई सूझ को देख हम प्रभावित हुए बिना नहीं रहे।

रात का अंधेरा तो यहाँ जैसे होता ही नहीं। पहले दिन रात के दस बजे जब आकाश में सूर्यास्त की लालिमा दिखाई दी और चारों ओर गो धूलि की सी बेला तो क्षण भर के लिए अपनी घड़ी पर अविश्वास होने लगा। फिर मालूम हुआ कि गर्मी की ऋतु में यहाँ दिन बहुत लम्बा और रात बहुत छोटी हो जाती है। रात के ग्यारह बजे तक सूर्य भगवान कुछ घंटों के लिए आँखों से ओझल हो सबेरे चार बजे फिर उदय हो जाते हैं। कहते हैं सत्रह जून यहाँ का सबसे लम्बा दिन हुआ था। इस दिन रात के साढ़े ग्यारह बजे सूरज छिप कर दो बजे पुनः निकल आया था। इसीलिए एक डेढ़ बजे तक घूम फिर कर आना और दो बजे के बाद सोना हमारी रोज की दिनचार्या सी ही गई है। सबेरे पौ फटने का समय तो हमने यहाँ अब तक देखा ही नहीं। रात के ग्यारह बजे से पहले तो कोई चाहने पर भी नहीं सो पाता, क्योंकि इस समय तक कमरे में काफी रोशनी रहती है और बिना अंधेरा हुए नींद नहीं आती। हमारे होटल में ठहरी हुई एक मुसलमान स्त्री अपने कमरे में चारों तरफ से पर्दे लगा कर अंधेरा करके सोती है।

यहाँ की स्त्रियों के सम्पर्क में आकर और उन्हें विभिन्न कार्य क्षेत्रों में संलग्न देख कर ही हमने अनुभव किया कि यहाँ का यह वर्ग, जो राष्ट्र निर्माण का एक प्रमुख अंग माना जाता है, बहुत ऊपर उठ चुका है। आर्थिक रूप से बिलकुल स्वतन्त्र होकर सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में ये स्त्रियाँ जागरूकता की एक लहर सी उत्पन्न करती हुई दिखाई देती हैं। कोई भी कार्य-क्षेत्र इनसे शून्य नहीं। होटल, रेस्टराँ स्कूल, अस्पताल, कालेज, नर्सरी, दुकान, बैंक, आफिस फैक्टरी आदि जिस ओर भी नजर उठा कर देखिये बहुत ही कुशलता से अपनी सब जिम्मेदारियों को निभाती हुई दिखाई देती हैं। किसी रेस्टराँ में पहुँच जाओ तो इनकी स्फूर्ति और

तत्परता देखने को मिलेगी। स्कूल में बच्चों के साथ इनका मृदुल व्यवहार इनके स्नेही स्वभाव का प्रतीक जान पड़ता है और दुकानों में खरीदारी करते समय इनकी व्यवहार कुशलता और ग्राहक को प्रभावित करने की क्षमता का सच्चा उदाहरण देखने को मिलता है। कल ही की तो बात है, मैं और तुम्हारी मम्मी अपने लिए कोट खरीदने के लिए निकले। "पिकैडली सरकस" (यहाँ का मुख्य बाजार) की सभी छोटी बड़ी दुकानों पर गए और इन स्त्रियों का कुशल मृदु व्यवहार देख कर प्रभावित हुए बिना न रह सके। हमारे दुकान में प्रवेश करते ही हमें अन्दर लेजाकर कुर्सियों पर बैठाया और सैकड़ों डिजाइन के कोट निकाल कर पहना कर शीशे में दिखाए। साथ में अपनी राय भी देती जाती थी कि कौन सा कोट मुझ पर और कौनसा तुम्हारी अम्मी पर अच्छा लगेगा, किस रंग और किस डिजाइन का आजकल फैशन है कौन सा ज्यादा गर्म और कौनसा कम गर्म रहेगा आदि बातें समझा कर बताती रहीं। हमारे पसन्द न आने पर हिन्दुस्तान की भाँति ये दुकानदार स्त्रियाँ नाक भौंह सिकोड़ कर ग्राहक पर कुड़कुड़ाती हुई दिखाई नहीं दीं बल्कि यह कह कर कि "मुझे अफसोस है कि मैं तुम्हारी माँग को पूरा न कर सका" हमें बाहर तक आकर विदा किया। इनकी नम्रता को देख, इनकी शिक्षा और संस्कृति का परिचय प्राप्त होता है। सब दुकानों में छान बीन कर लेने के बाद "बेबी कोट" की दुकान में जाकर हमें अपने नाप के कोट मिल सके क्योंकि यहाँ की चौदह पन्द्रह, साल की लड़कियाँ डील डौल और लम्बाई चौड़ाई में हमारे जैसी होती हैं।

हमने इन स्त्रियों की दैनिक दिनचर्या को देख कर और उसके विषय में जानकर यह भी अनुभव किया कि ये महिलायें आर्थिक संकट को समझाने और सुलझाने में भी बहुत योग देती हैं। कभी फिजूल खर्ची करके बाह्य आडम्बर के फेर में नहीं पड़तीं। हमारे इस म्योर होटल के आसपास कुछ मध्यम वर्ग की अंग्रेज महिलायें रहती हैं। इनमें से कुछ तो किसी दफ्तर में काम करने के कारण सबेरे से ही घर से निकल जाती हैं

और बच्चों को नर्सरी स्कूल में छोड़ जाती हैं। कुछ ऐसी भी हैं जो कहीं बाहर नौकरी करने तो नहीं जातीं, पर घर का सारा भार खुद सम्भालती हैं। बाजार से खरीदारी करके खुद सामान ढो-ढो कर बसों से आते हुए इन्हें तनिक भी संकोच नहीं होता। दोनों हाथों में तरकारी, फल तथा अन्य सामान से भरे हुए दो-दो थैलों को सम्भाले बड़ी स्फूर्ति से लंदन की विशाल सड़कों, बसों, टैक्सियों या भूगर्भ रेलों का सफर करती हुई चली आती हैं। भोजन में भी हमने इन्हें उन्हीं पदार्थों का प्रयोग करते देखा जिनमें समय, परिश्रम तथा खर्च कम लगता है और पौष्टिक अधिक होते हैं। यहाँ मिर्च मसाले और प्याज में तरकारी को भून कर जिह्वा प्रिय नहीं बनाया जाता बल्कि उबली, भूनी हुई या कच्ची सब्जियों का ही प्रयोग किया जाता है।

अपने बच्चों की भी देखभाल ये स्त्रियाँ स्वयं ही करती हैं। तुम्हारी सहेली "किटी" की भाँति इन बच्चों पर "आया" या नौकर रखने का रिवाज यहाँ नहीं है। कपड़े धोने से लेकर सुलाने तक के सब कामों के अतिरिक्त अपने बच्चों को शाम को गाड़ी पर घुमाने भी स्वयं ही ले जाती हैं। अगर किसी काम से जाना है तो बच्चे का आवश्यक सामान दूध, शीशी, तौलिया खिलौने आदि भी उसी गाड़ी में रख कर साथ ले जाती हैं। "हैरी पॉलेट" की मीटिंग में हमने कितनी ही ऐसी महिलाओं को देखा जो गाड़ी में बच्चों को अपने साथ लाई थीं। बच्चों को गोद में लेने की तो इन्हें कतई आदत नहीं। कितनी ही स्त्रियाँ तो दोपहर के समय भी बच्चे को गाड़ी में लिटा कर बाहर धूप में छोड़ देती हैं और घर का काम करती रहती हैं। भारतीय स्त्रियों की भाँति अधिक संतति पर विश्वास न करने के कारण यहाँ की महिलाएँ प्रायः दो-तीनबच्चों का स्वतः प्रबंध करने में सरलता अनुभव करती हैं।

इन स्त्रियों की हँसमुख और निश्चित आकृति को देख यह अनुमान लगाना कठिन हो जाता है कि ये राष्ट्र की बड़ी बड़ी जिम्मे-

दारियों को सम्भाले हैं क्योंकि भारतीयों की भाँति इन्हें कभी चिन्ता ग्रस्त होते नहीं देखा। फैशन करने की ओर भी इनको अधिक रुचि दिखाई नहीं दी। ऊपर का कोट भी दिखावटी होने के बजाय गर्म ही अधिक होता है। हाँ लिपिस्टक से अवश्य ही इनका कुछ मोह है। हमारे होटल में रहने वाली अंग्रेज महिलायें जब तक सवेरे उठते ही अपने होटों को न रंग लें, कमरे से बाहर नहीं निकलती।

यह होटल हमें काफी महँगा पड़ता है। रात का सोना और सवेरे का नाश्ता, इसके किराये में ही सम्मिलित है। नाश्ता लगभग दस बजे तक नहा धोकर करते हैं अतः लंच खाने की आवश्यकता नहीं रहती। इसमें भी पैसा की बचत हो ही जाती है। किसी लैंडलेडी के मकान का कमरा मिलते ही वहाँ चले जायेंगे क्योंकि वे कमरे काफी सस्ते पड़ते हैं।

अच्छा शेष फिर,

प्यार

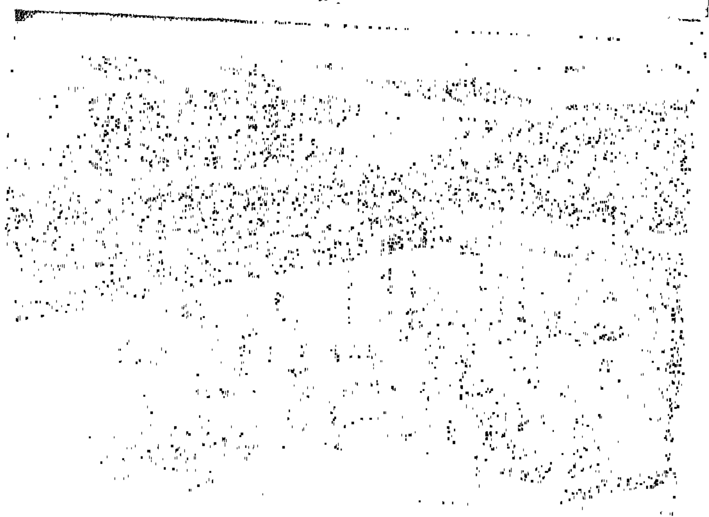
लन्दन,
२० जुलाई १९५१

तुम्हारे मामा का मित्र श्री चावला जिसके नाम उन्होंने पत्र दिया था बड़ा नेक लड़का निकला। एक 'लैंड लेडी' के मकान में एक कमरे का प्रबन्ध करके हमें होटल की मंहगाई से बचा दिया।

कमरा तो वैसे दो व्यक्तियों के रहने का है पर लैंड लेडी से हम तीनों को एक साथ रहने की आज्ञा मिल गई है अतः यह और भी अधिक सस्ता पड़ गया। खाना अब हम स्वयं ही बना लेते हैं। नाश्ता तो कुछ करते नहीं, लगभग दस साढ़े दस बजे खाना खाकर घर से निकल जाते हैं। हम लोग प्रायः चावलों की तहरी और उसके साथ डबलरोटी खाकर ही संतोष कर लेते हैं। यहाँ खाने पीने रहने आदि में कम से कम खर्च करके, पिछले दिनों होटल में होने वाले अधिक व्यय की पूर्ति करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

कमरा खासा अच्छा, खुला और हवादार है। खिड़कियाँ खोल लेने से कुर्सी पर बैठे बैठे सामने के दृश्य देखे जा सकते हैं। मकान मालकिन का स्वभाव भी बड़ा मधुर एवं स्नेही प्रतीत होता है। पाँच मंजिल के इतने बड़े मकान की देख भाल और किरायेदारों के रखने आदि का प्रबन्ध ये स्त्रियें बिना किसी पुरुष की सहायता के बड़ी सफलता के साथ करती हैं। प्रातः काल हमें देखते ही मुस्कराती हुई हमारे पास आकर पूछती है "कहिये बहनों, क्या हाल है, किसी चीज की आवश्यकता तो नहीं आज दिन भर के क्या क्या प्रोग्राम हैं" आदि आदि। इतने बड़े मकान की इतनी अधिक सफाई भी मन पर असर डाले बिना नहीं रहती। चौके तक में एक सींक या कागज का टुकड़ा पड़ा दिखाई नहीं देता। पहली बार जब हम अपना खाना बनाने रसोई घर में आये तो गैस का चूल्हा जला कर दियासलाई की सींक तक इधर उधर फेंकने की हिम्मत न पड़ी। चारों ओर नजर





दौड़ाई तो एक कोने में टीन की छोटी सी डिबिया रखी हुई दिखाई दी। इसी में सब सीकें एकत्र थीं। बर्तनों को साफ करने में भी मिट्टी या राख का प्रयोग नहीं किया जाता। जालीदार ब्रुश में साबुन लगा कर रगड़ने से बर्तन जल्दी ही साफ हो जाते हैं और हाथ भी गन्दे नहीं होते। हिन्दुस्तान की भाँति इस काम के लिए अलग से महरियाँ नहीं रखी जातीं बल्कि ऐसे सब काम खुद ही करने पड़ते हैं। खाना बनाते ही हम सब बर्तन, प्लेटें आदि सावधानी से धोकर, तौलिये से पोंछ कर मकान-मालकिन के हवाले कर देते हैं।

हमारा दिन भर का कार्यक्रम बहुत व्यस्त-सा रहता है। तुम्हारे बाबू तो अपने व्यापारिक कामों के लिए सबेरे से ही निकल जाते हैं। हम दोनों दस बजे खाना खाकर जो बाहर निकलती हैं तो रात के बारह बजे से पहले कभी नहीं लौट पातीं। सबेरे से ही दिन भर का कार्यक्रम निश्चित करके यहाँ के अनेक दर्शनीय स्थानों का निरीक्षण करती हुई हम दोनों अकेली बसों, मेट्रो आदि के द्वारा मीलों दूर के चक्कर काट आती हैं। हमने एक "लंदन गाइड" नाम की पुस्तक खरीद ली है जिसमें लंदन के दर्शनीय स्थानों का संक्षिप्त वर्णन, उनका स्थान और वहाँ तक पहुँचने के लिए बसों के नम्बर और मेट्रो के नाम आदि सब दिए हुए हैं। इसके सहारे अपने वांछनीय स्थान पर बिना किसी विशेष कठिनाई के हम लोग पहुँच जाते हैं। यहाँ का वातावरण, यहाँ के व्यक्तियों का व्यवहार और शिष्टाचार हमारे देश से बिल्कुल विपरीत है। आवश्यकता पड़ने पर हम जरा किसी राह चलते व्यक्ति से रास्ता पूँछ लेती हैं तो वह दस मिनट तक सीधे, दायें, बाँए आदि जाने के लिए आवश्यक पथ-प्रदर्शन करता रहता है। और कभी-कभी तो यहाँ तक कि वह व्यक्ति हमारे साथ चल कर किसी मोड़ तक हमें पहुँचा देता है। परसों हैम्प्टन कोर्ट जाने के लिए हमने एक युवक से वहाँ तक जाने वाली बस का नम्बर पूछा तो वह बेचारा आधे मील तक चल कर हमें बस में बैठा कर ही वापिस लौटा। यही कारण है कि हम बेखटके बाहर निकल जाते हैं और मीलों दूर जाने में भी नहीं हिचकते।

अभी अभी तुम्हारे बाबू एक फैक्टरी में कुछ मशीनें देख कर लौटे हैं। उनका कथन है कि यहाँ का व्यापारी वर्ग भी अपने क्षेत्र में बहुत ही व्यवहार कुशल और पटु जान पड़ता है। अपने मधुर व्यवहार द्वारा वह ऐसा प्रभाव डालता है कि ग्राहक सरलता पूर्वक उससे छूट कर नहीं जा सकता। जबसे एक दलाल को यह मालूम हुआ है कि तुम्हारे बाबू प्रेस सम्बन्धी मशीनों में रुचि रखते हैं तबसे उनकी चाँदी ही चाँदी हो रही है। तुम उनकी खातिरदारी का अनुमान नहीं लगा सकतीं। सबेरे ही चमचमाती हुई बोक्सोल मोटर उनकी सवारी के लिए होटल के दरवाजे पर आ पहुँची और वह दलाल बड़े से बड़े रेस्तरा में नाश्ता कराने के लिए उन्हें ले गया। खाने के समय वेजीटेरियन (शाकाहारी) होटल की तलाश में वह अपनी मोटर का कितने ही गैलन पेट्रोल खर्च करने में भी नहीं हिचकिचाया और कुछ ही घंटों में ऐसा घुल-मिल गया मानों महीनों की जान पहचान हो। अपनी फैक्टरी में लाकर मशीनों का ऐसा विस्तृत ब्योरा देता रहा कि वे उससे प्रभावित हुए बिना न रह सके। तात्पर्य यह कि यहाँ आकर ऐसा अनुभव होता है कि सभी व्यक्ति अपने-अपने क्षेत्र में सफलतापूर्वक अपने उत्तरदायित्व को पूर्ण कर रहे हैं।

यहाँ स्थान-स्थान पर वैज्ञानिक आविष्कारों का प्रयोग जो हमारे लिए बिलकुल नया सा है देखने को मिला। टेलीविजन का रेडियो तो हमारी लेंड लेडी के मकान में ही है। बिलकुल सिनेमा सा होता दिखाई पड़ता है। क्रिकेट आदि के मैच बिना बाहर जाने का कष्ट उठाए आराम कुर्सी पर बैठे-बैठे देख सकते हैं। ट्यूब स्टेशनों पर बिजली से चलती हुई सीढ़ियाँ भी हमारे लिए नया वैज्ञानिक आविष्कार था, कुछ दिन तक तो बार-बार इन सीढ़ियों पर चढ़ने उतरने का चाव पूरा करते रहे पर बाद में सैकड़ों मर्तबा इन्हीं के द्वारा आने जाने के कारण जी भर गया। इन स्टेशनों पर भीड़ होने पर भी टिकट लेने में कोई कठिनाई नहीं होती। पास-पास कितने ही छोटे-छोटे टीन के बक्से से लगे हुए हैं। इनके ऊपर स्टेशनों के नाम तथा उनके किराये लिखे रहते हैं। अपने स्टेशन का नाम देख कर टिकट के

दामों की पैनियाँ डालते ही टिकट स्वयं ही छेद में से बाहर निकल आता है। हाँ अगर पास में भुनी हुई पैनियाँ न हों तो टिकट घर जाकर ही टिकट खरीदना पड़ता है। इसी प्रकार का नियम इन स्टेशनों पर बने बाथरूम में भी है। एक पैनी डालने पर ही ये बाथरूम् खुलते हैं वरना नहीं। अन्दर जाकर तीन पैनी और देने पर तौलिया, साबुन, कंघा आदि भी मिल सकता है। छोटे से छोटे होटल या रेस्तराँ में चले जाओ। मीनू में लिखी हुई मनचाही वस्तुओं का आर्डर दे दो। क्षण भर में ही बिजली से चलती हुई काठ की सीढ़ी पर सब चीजें प्लेटों में सजी-सजाई चली आती हैं। वैरे को ऊपर रसोईघर में जाकर लाने का कष्ट नहीं उठाना पड़ता। प्लेटें निकाल कर बटन दबा देने पर वह सीढ़ी पुनः ऊपर चली जाती है। आम स्थानों पर इन नए वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रयोगों को देख कर ऐसा जान पड़ा कि इन्होंने मानव की कार्य क्षमता को बहुत अधिक बढ़ा दिया है। बिजली के द्वारा चलती हुई कपड़े धोने की मशीन में बिना परिश्रम किए कपड़े साफ होकर बाहर निकल आते हैं। अपने यहाँ जरा धोबियों की हालत देखो। रात दिन कपड़े पटकते-पटकते कपड़ों की छीछालेदर तो होती ही है साथ ही धोबियों की जिन्दगी भी हराम हो जाती है।

सुना तो था कि इंग्लैंड में अब रंगभेद की भावना प्रायः समाप्त-सी हो चुकी है पर हमने तो स्वयं ही इसके कुछ अनुभव किए और जिस किसी भारतीय से मिले उसने भी ऐसा ही असंतोष प्रकट किया। किसी भी होटल में चले जाओ काला रंग देखते ही कमरा देने के लिए होटल के मालिक के मुख पर संकोच की भावनायें स्पष्ट रूप से झलकने लगती हैं। कल अचानक लस्टर स्कायर के पास जहाज के एक स्काउट लड़के से भेंट हो गई। उसने भी शिकायत करते हुए यही कहा—"होटल की महंगाई के कारण सब जमा पूँजी खतम हुई जा रही है। किसी लैंड लेडी के मकान का कमरा पिछले हफ्ते से तलाश कर रहा हूँ पर काला रंग देखते ही मकान-मालकिन सिर हिला देती है।" यहाँ तक कि जिन भारतीयों

ने अंग्रेज लड़कियों से विवाह करके वहीं अपना निवासस्थान बना लिया है उन्हें भी प्रायः ऐसी ही अनेक कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं। स्पष्ट है कि यहां अब भी भारतीयों को काले आदमी के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझा जाता है।

लंदन के संबंध में हमारी यह पूर्व धारणा भी निराधार निकली कि यहाँ वेश्यावृत्ति अपराध या गैरकानूनी है। ऐसा करने के लिए सरकार के समक्ष एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व आ उपस्थित होता है। वेश्यावृत्ति के मूल में जीविकोपार्जन की समस्या ही मुख्य रूप से निहित है। और जब तक यहाँ की सरकार सभी वेश्याओं के उदर पोषण का उत्तर-दायित्व नहीं ले लेती (जैसा कि रूस और चीन की सरकारों ने लिया है।) तब तक इसे गैरकानूनी करार नहीं दिया जा सकता। रात के समय लंदन के बड़े-बड़े बाजारों में कितनी ही युवतियाँ राह चलते अनुरोध करती हुई या सीटी बजा कर उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती हुई दिखाई देती हैं। इसे उनकी केवल उच्छृंखलता, शौक या दिल बहलाव नहीं कहा जा सकता। इन सबके मूल में उनकी आर्थिक विवशता ही है। पर यहाँ भारत की भाँति वेश्याओं के चकले नहीं हैं किसी भी सड़क बाजार या मुहल्ले में ऐसे दृश्य देखने को मिल जायेंगे। एक दिन रात में हम लोग घूमते घामते यहाँ के "हाइड पार्क" के कोने में जा निकले। अँधेरे में वृक्षों के नीचे बेंचों या जमीन पर बैठे लेटे हुये जोड़ों को देख हमलोग दंग-से रह गए। बाद में मालूम हुआ कि अपनी पसन्द के या मोल तोल किए हुए जोड़े इसी पार्क में आकर घंटों व्यतीत कर देते हैं।

लंदन के विषय में अन्य घटनायें अगले पत्र में लिखूँगी।

—प्यार

लन्दन,
१ अगस्त १९५१

"अभी हमें शायद लंदन में एक सप्ताह और रहना पड़े क्योंकि चौबिस के बजाय तीस जुलाई को "चार्टेज हवाई" जहाज द्वारा सब भारतीय प्रतिनिधियों को बर्लिन भेजने की आयोजना यहाँ की "ब्रिटिश सम्मेलन कमेटी" के द्वारा की गई है। वैसे कुछ मुख्य व्यक्तियों को 'बातोरी' जहाज से जल्दी ही भेजने का प्रयत्न किया जा रहा है, पर अभी तक कुछ भी निश्चित नहीं है। यहाँ हम सब भारतीय प्रतिनिधि बर्लिन सम्मेलन के लिए स्वर्गीय 'रवीन्द्रनाथ टैगोर' का लिखा "तारोर देरा" (ताश का देश) ड्रामा बैले के रूप में तय्यार कर रहे हैं। इसमें अधिकांश लन्दन और फ्रांस के बंगाली युवक-युवतियों ने ही भाग लिया है, क्योंकि हिन्दुस्तान से अभी तक हम तीनों के अतिरिक्त कोई नहीं आ सका। सुनने में आया है कि हमारी सरकार ने इस बर्लिन युवक सम्मेलन में जाने वाले अनेक प्रतिनिधियों को पासपोर्ट देने से इन्कार कर दिया। बम्बई की सम्मेलन कमेटी की सेक्रेटरी विमला बकाया को तो हवाई जहाज पर चढ़ते समय पासपोर्ट छीन कर रोक लिया गया। ऐसे ही अनेक समाचार वहाँ से आने वाले भारतीयों के विषय में प्राप्त हो रहे हैं।

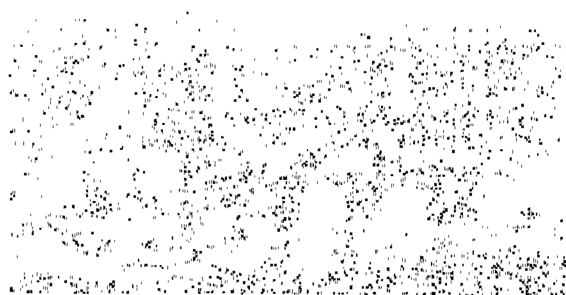
हमारे बैले का रिहर्सल रोज शाम को 'पिकेडली सरकस' के पास एक बड़े विशाल हाल में होता है। यह स्थान हमारे होटल से काफी दूर पड़ता है। अतः लौटते-लौटते रात के ग्यारह बज जाते हैं। हमने केवल 'यूथ सौंग' में ही भाग लिया है अतः रोज न जाकर तीसरे-चौथे दिन जाने में भी कोई विशेष हानि नहीं होती। यहाँ आकर भी सबसे पहले तुम्हारी अम्मी की पुरानी बीमारी ने ही स्वागत किया पर स्टेट की ओर से नियुक्त किए गए 'नेशनल डाक्टर' का पता मिल जाने से यहाँ हमें केवल दवा के दाम ही खर्च करने पड़े, फीस आदि नहीं, और वे शीघ्र ही पूर्ण स्वस्थ हो गईं।

कल तुम्हारे मामा के मित्र श्री 'चावला' के साथ यहाँ का 'ब्रिटिश म्यूजियम' देखने गए। यहाँ विश्व की पुरानी चीजों का सुन्दर संकलन देखने को मिला। इजिप्ट, रोम, चीन, जापान आदि अनेक देशों के पुराने खंडहरों को जोड़ कर मूर्तियें तैयार करके रखी गई हैं। इजिप्ट से लाई हुई सैकड़ों वर्ष पुरानी ममीस (मृत व्यक्तियों के शरीर) शीशे की आलमारियों में सजी हुई हैं। हजारों वर्ष पुरानी पुस्तकों की प्रतियाँ भी सुन्दर ढंग से सुरक्षित अवस्था में देखीं जिनमें हमारी रामायण और महाभारत भी है। देर हो जाने के कारण हमने केवल एक शाला ही देखी, उसमें ही दो घंटे से अधिक लग गए। सारा म्यूजियम देखने के लिए तो शायद पूरा दिन लग जाता। यहीं से सीधे 'नूरजहाँ होटल' में खाना खाने चले गए। खाने के बाद मीठे के लिए मन ललचाया तो सबने एक एक जलेबी ली जो चार चार पैंस की थी अतः रोज की अपेक्षा आज खाने का बिल ज्यादा वजनी हो गया।

यहाँ का 'हैम्प्टन कोर्ट' भी हमें बहुत पसन्द आया। हम दोनों अकेली बस में गई थीं। सारा दिन लग गया। ढाई घन्टे का तो बस का रास्ता ही था फिर रास्ते न मालूम होने के कारण कुछ देर भटकना भी पड़ा। यह एक ऐतिहासिक प्रासाद है। सन् १६३२ में कार्डिनल (रोमन कैथोलिक पादरी) ने इस प्रासाद को बनवाया था। सामने एक छोटा-सा सरोवर वाटिका, हरे भरे विशाल उपवन और मैदान हैं। अन्दर अनेक कमरों में सजी हुई पुरानी मूर्तियें और ऐतिहासिक चित्र हैं। सभी चीजों को देखने में ढाई-तीन घन्टे लग गए। गाइड ने हमें बताया कि इस प्रासाद के बनवाने में फ्रांस के सुप्रसिद्ध प्रासाद वार्साई का अनुकरण करने का प्रयत्न किया गया है। सरोवर के समीप हरी घास पर बैठ कर चारों ओर के दृश्य बहुत सुहावने लगते हैं। ऐसे सुन्दर प्राकृतिक स्थानों का आनन्द और पिकनिक का-सा सुख अनेक मित्रों या सगे सम्बन्धियों के साथ ही लिया जा सकता है। अतः हम दोनों को कुछ एकाकीपन-सा अनुभव होना स्वाभाविक था। घर पहुँचते पहुँचते काफी रात हो गई और तुम्हारे बाबू

का डॉट भी सुनने को मिला कि इतनी दूर 'हैम्प्टन कोर्ट' अकेले जाने का क्या तुक था ।

'ब्रिटेन के उत्सव' की भी कुछ प्रदर्शनियाँ जो लंदन के अनेक स्थानों में बड़े ही सुन्दर ढंग से आयोजित की गई हैं, हमने देखीं । आजकल यहाँ इस उत्सव का बहुत धूम है । अब से सौ वर्ष पूर्व १८५१ में ऐसा उत्सव महारानी विक्टोरिया के समय में पहली बार मनाया गया था । इस उत्सव के कारण लन्दन का समस्त वातावरण आज आकर्षण का केन्द्र बन गया है । हजारों की संख्या में स्त्री, पुरुष और बच्चों के अनेक दूरस्थ स्थानों से झुंड के झुंड आते हुए दिखाई दे रहे हैं । सुना है भारत से भी कुछ धनिक वर्ग के व्यक्ति हवाई जहाज के द्वारा इस उत्सव को देखने के लिए ही आये हैं । हवाई जहाज के रिटर्न टिकटों में भी कन्सेशन कर दिया गया है । लन्दन में इस मेले को विशेष महत्व दिया जा रहा है । जिस ओर भी नजर उठाओ उसी ओर बाजारों, स्टेशनों दूकानों बसों, टैक्सियों होटलों और रेस्ट्राँ में जगह-जगह इसके बड़े बड़े इश्तहार लगे हुए दिखाई देते हैं । इस उत्सव की प्रदर्शनियों में जाने के लिए स्थान स्थान से स्पेशल बसें चल रही हैं जिससे इतनी भीड़ में भी जनता को आने जाने में किसी प्रकार की कठिनाई या असुविधा नहीं प्रतीत होती । स्कूल और कालेजों के विद्यार्थी बसों और मेट्रो में भर भर कर जाते हुये दिखाई देते हैं क्योंकि इस उत्सव की कुछ प्रदर्शनियाँ विद्यार्थियों के लिए विशेष रूप से उपयोगी तथा मनोरंजक हैं । प्राइमरी स्कूलों के छोटे-छोटे बच्चे भी इस आनन्द से वंचित नहीं रखे जाते । दो-दो का जोड़ा बनाए लम्बी-लम्बी कतारों में अध्यापकों के नियंत्रण में अनुशासित ढंग से चलते हुए एक रोचक दृश्य उपस्थित करते हैं । और तो और रोगी तथा अपाहिज व्यक्ति भी पहियेदार कुर्सियों में बैठ कर प्रदर्शनियों के चक्कर काटते हुए नजर आते हैं अभी अभी हम लोग 'आनन्द बाग' की प्रदर्शनी देखकर लौटे हैं । मस्तिष्क में वही दृश्य वही भीड़ और वैसा ही हास-विलास का वातावरण चक्कर काट रहा है खेलकूद और मनोरंजन के संख्यातीत नवीन साधनों से भरी हुई यह



प्रदर्शनी ब्रिटेन के इस उत्सव में अपना एक विशेष स्थान रखती है। हमें तो यह मानव की अनुरंजित भावनाओं की पूर्ति के साधनों का आगार सा प्रतीत हुआ। दूर से ही विभिन्न रंगों की बत्तियों का प्रकाश, उल्लास भरे स्त्री पुरुषों और बच्चों की अपार भीड़ और स्वागत करते हुये रंग-बिरंगे पानी के अनेकों फव्वारे देख कर एक रंगीन और चमकीली दुनियाँ में पहुँच जाने का आभास होने लगता है। टिकट खरीद कर जगमग करती हुई रोशनी वाले गेट से अन्दर प्रवेश किया तो अपने चारों ओर का वातावरण देख कर क्षण भर के लिए ऐसा जान पड़ा मानो सीधे स्वर्ग पुरी आ पहुंचे हों। ऊँची-ऊँची पहाड़ियों पर सर्राटे से दौड़ती हुई रेल, बिजली द्वारा चलती हुई छोटी-छोटी मोटरें, मछली का निशाना मार कर कोट को प्राप्त करने की इच्छा वाले किस्मत आजमाइश करते हुए सैकड़ों स्त्री-पुरुषों की भीड़, गाड़ियों में बैठे हुए चिल्ल-पों करते हुए सुन्दर तथा स्वस्थ बच्चे तथा जीवन की सभी चिन्ताओं से मुक्त आल्हाद भरे नर-नारियों की टोलियों को देख किसी स्वर्ग पुरी का-सा आभास होने लगना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। एक एक शिलिंग का टिकट लेकर पहाड़ी पर चलती हुई रेल में हम एक नया अनुभव करने की इच्छा से बैठे। चोटी पर से नीचे की ओर जब रेल अपनी द्रुत गति से बढ़ी तब आश्चर्य स्तम्भ और वैवर्ण्य से मिश्रित हमारी आकृतियाँ भी मानो उस प्रदर्शनी का एक अंग बन गई थीं। प्रभा, सच मानो उस समय मेरी बड़ी विषम स्थिति थी। अपनी साड़ी का पल्ला दाँत से दबाकर पास ही बैठी तुम्हारी मम्मी को कस कर पकड़ मैं इस प्रकार दुबक कर बैठी रही जैसे कोई व्यक्ति शेर को देख साँस रोक कर एक कोने में दुबक कर बैठ जाता है। तीन चक्कर लगाने के बाद जब रेल से उतरे तब राहत की साँस ली। इसके बाद फिर किसी अन्य खेल मे भाग लेने की हिम्मत न पड़ी।

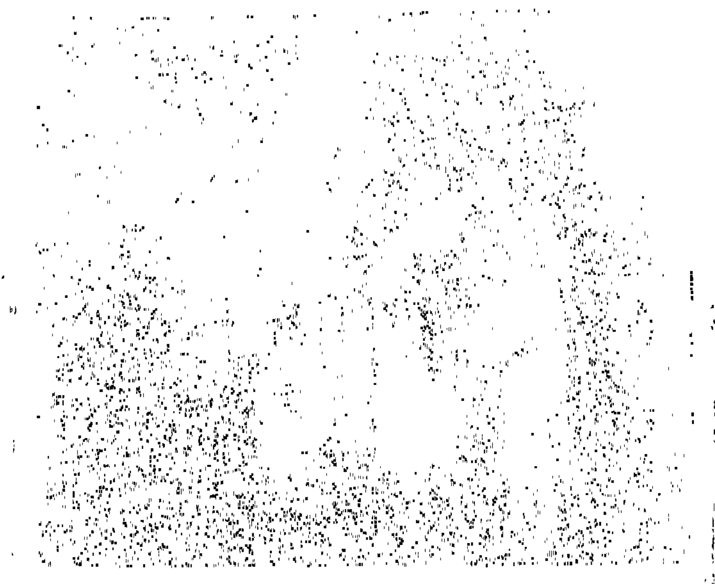
इस प्रदर्शनी में हमने देखा कि 'क्यू' का सिस्टम बहुत प्रचलित है। टिकट लेने के लिये 'क्यू' लिफ्ट पर चढ़ने के लिए क्यू, दर्शनीय वस्तुओं को देखने के लिए क्यू और यहाँ तक कि आयस्क्रीम खरीदने के लिए भी 'क्यू' में

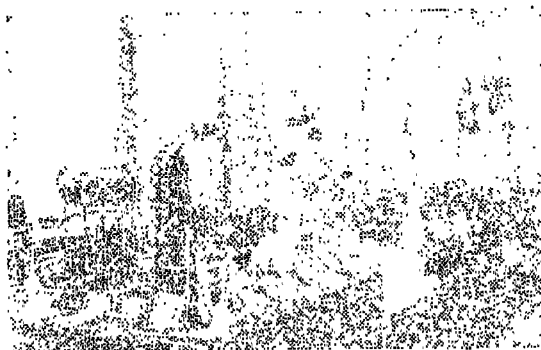
खड़ा होना पड़ता है। इससे सबको सबसे बड़ी सुविधा यह हो जाती है कि लाखों की भीड़ मे भी सब वस्तुओं का आनन्द आसानी से लिया जा सकता है। कहीं भी धक्कम-धुक्की या भाग-दौड़ की मनोवृत्ति नजर नहीं आती। भारत मे तो एक साधारण से मेले में जाना एक समस्या बन जाता है। भूख लगने पर पास के रेस्ट्राँ मे जाकर भी यहाँ 'क्यू' का प्रचलन देखा। लाइन में खड़े हो जाइए। अपनी बारी आने पर बड़ी प्लेट में स्वयं ही अपनी मनोनुकूल वस्तुएं लीजिये, पीछे बैठी हुई महिला को बिल चुका कर टेम्स नदी के किनारे बिछी हुई कुर्सियों पर बैठ जाइए। वहाँ पर गर्म चाय या कॉफी मंगा कर खाने और सब दृश्यों को देखने का सच्चा सुख ले सकते हैं। बाद में अपनी सब प्लेटों को नियत स्थान पर रख देना पड़ता है।

इस प्रदर्शनी में ऐसे कितने ही खेलों का आयोजन किया गया है जिनसे अपना बौद्धिक परीक्षण होता है और विजयी होने पर पुरस्कार भी दिया जाता है। अतः इनके प्रति आकर्षण एवं रोचकता की वृद्धि स्वाभाविक है। बिजली से चलते हुए दो सिपाहियों में से किसी की टोपी का निशाना मार देने से किनारे रक्खी हुई अनेक वस्तुओं में कोई भी मनचाही वस्तु ले सकते हैं। टिकट केवल तीन पैसा और सफलता मिलने पर लगभग पाँच पौंड की वस्तु प्राप्त होती है। इस आकर्षण ने इस स्थान पर खासी अच्छी भीड़ एकत्रित कर दी है। हमारे सामने कितने ही व्यक्तियों ने हाथ आजमाइश की पर सभी असफल रहे। लौटते समय जब हम जरा देर यहाँ ठिठक कर फिर इसी [illegible] एक बारह बरस की आयरिश लड़की ने पहली ही [illegible] सिपाही की टोपी गिरा दी। पास खड़े सभी व्यक्तियों ने उसे गोदी में उठा कर प्यार किया। उसने पुरस्कार में अपनी रुचि की एक हाथ की घड़ी ले ली। इसी प्रकार के अन्य भी कितने ही रोचक खेल हैं जिनको घंटों देखते रहने पर भी जी नहीं भरता है।

"साउथ बैंक" की प्रदर्शनी में प्रवेश करते ही ऐसा आभास होता है मानों किसी ऐसी नई वैज्ञानिक दुनियाँ में आ पहुँचे हों जहाँ मशीनों के

१९५१ में सौ साल बाद मनाया जाने वाला "फेस्टीवेल आफ ब्रिटेन"





कल्पनातीत आविष्कारों ने मानव श्रम को बहुत कम कर दिया है। इसमें मानव-मस्तिष्क से उत्पन्न उन सभी नवीन अन्वेषणों का प्रदर्शन किया गया है जहाँ तक व्यक्ति की पहुँच अब तक असाध्य प्रतीत होती थी। यह प्रदर्शनी "ब्रिटेन के उत्सव" की सब प्रदर्शनियों से विशाल तथा ज्ञान वर्धक है। विज्ञान के विद्यार्थियों और विज्ञान में रुचि रखने वाले व्यक्तियों के लिए यह अत्यन्त उपयोगी है। कितने ही व्यक्तियों ने इसे लगातार कई बार देखा और अपने ज्ञान की वृद्धि भी की। एक विशाल कमरे में उन विश्व विख्यात वैज्ञानिकों की मूर्तियों का संकलन है जिनके प्रतिभाशाली मस्तिष्कों ने उन नए आविष्कारों को जन्म दिया और जिनके सहारे आज का वैज्ञानिक इतना आगे बढ़ सका। इसी कमरे के दाहिनी ओर नजर उठाई तो घर को सुन्दर और सुव्यवस्थित बनाने की अनेक नवीन वस्तुओं का सुन्दर प्रदर्शन देखा। गाइड ने हमें बताया कि स्थानाभाव के कारण एक ही कमरे में किस प्रकार की उपयोगी और आवश्यक वस्तुओं को सुसज्जित कर समस्या हल की जाती है। एक ही छोटी सी अलमारी में खाना बनाने वाला गैस का चूल्हा, बर्तन रखने की दराज, टोस सेंकने की जाली, और फल तरकारी रखने का स्थान सम्मिलित है। रसोई घर में रखी हुई यह एक आलमारी हमारी अनेक आवश्यकताओं को पूरा कर सकती है। ड्राइंगरूम में गद्देदार कोच भी स्थानाभाव की ऐसी ही समस्या को सुलझाती है। दोनों ओर से खोल देने पर यही कोच रात को गद्देदार पलंग का काम देती है। विज्ञान की यह विशाल प्रदर्शनी कई दिन लगातार देखने पर भी समाप्त नहीं होती। ब्रिटेन के उत्सव की इन सब प्रदर्शनियों में अन्य विशेषताओं के अतिरिक्त सुव्यवस्था और सफाई भी मन पर प्रभाव डाले बिना नहीं रहती। लाखों व्यक्तियों की भीड़, स्थान-स्थान पर खाने की वस्तुयें, अनेक रेस्तरां, आयस्क्रीम, बिस्कुट, केक आदि की संख्यातीत दुकानें पर विशेषता यह कि कहीं भी कागज का टुकड़ा या जली हुई सिगरेट तक जमीन पर गिरी हुई नहीं दिखलाई पड़ती है। [illegible] आयस्क्रीम की सींक या बिस्कुट का कागज [illegible] के डिब्बे में ही फेंकता है. सभी हो

उसे इसके लिये थोड़ी दूर पैदल चलने का कष्ट क्यों न उठाना पड़े। निश्चय ही इस प्रकार के आचरण एवं नागरिकता की भावना प्रत्येक स्थिति में अनुकरणीय है।

कल हमने "विक्टोरिया एलबर्ट म्यूसियम" देखा। इसे पूरी तौर से सजा दिया गया है। ऐतिहासिक सामग्री तथा कला की चीजों का इस म्यूजियम में सुन्दर संकलन है। यह स्थान शताब्दियों पूर्व के राजा रानियों की पोशाकें, आभूषण, बर्तन, सिक्के, घड़ियाँ, लिपियाँ आदि का संग्रहालय-सा प्रतीत होता है। एक कमरा पुरानी चित्रकला के नमूनों से भी भरा हुआ है जिसमें सोलहवीं सदी से लेकर उन्नीसवीं सदी तक के चित्रकारी के नमूने हैं। इंगलैंड की भूमि मे क्या सम्पत्ति है और इसकी भूमि का निर्माण कैसे हुआ इसका सुन्दर प्रदर्शन यहाँ के "भूतत्त्व म्यूसियम" में देखने को मिलता है। नक्शे और रेखाचित्रों के द्वारा बड़े ही सुन्दर ढंग में समझाया गया है। साइन्स म्यूजियम में रेल, मोटर, विमान जहाज प्रेस आदि सैंकड़ों प्रकार की मशीनों के विकास का इतिहास दिखाया गया है। "अलबर्ट म्यूसियम की चित्रशाला देखने से मालूम होता है कि इंगलैंड पन्द्रहवीं सदी में ही वस्तुवादी हो गया था जब कि अन्य देश अठारवीं सदी मे हुए।

हमारा यह प्रयत्न होगा कि हम इस सप्ताह में लंदन के सभी दर्शनीय स्थानों को देख लें। घूमते घामते एक दिन थियेटर हाल मे ड्रामा देखने पहुँच गए। ड्रामा तो हमें विशेष रुचिकर नहीं लगा पर थियेटर का हाल बहुत सुन्दर था। लाल मखमल की गद्देदार कुर्सियों पर बैठ कर ड्रामे का सच्चा आनन्द लिया जा सकता है। प्रत्येक कुर्सी के दाहिने ओर एक छोटी सी दुरबीन लगी रहती है डिब्बे में छः पैन्स डालते ही यह दुरबीन बाहर निकल आती है और पूरे समय इसका प्रयोग कर सकते हैं। छः पैन्स में एक ही दुर्बीन निकाल कर हम तीनों ने उससे काम चलाया। ड्रामे का आनन्द दुर्बीन ने दुगना कर दिया। ड्रामा समाप्त होने पर उस दुर्बीन को वहीं यथास्थान रख दिया जाता है। हम सोचने लगे भारत में ऐसा

नियम हो तो अगले दिन सब दुकानें ही नदारद हो जाँय । छः पैन्स में भी दर्शक दुकानों को जेब में डाल अपनी ईद समझ कर चलते बनें ।

हमने यहाँ का इंडिया हाउस भी देखा जहाँ अब भी अंग्रेज कर्मचारियों की अधिकता है और भारतीय कर्मचारियों को काले साहब से अधिक नहीं समझा जाता । इसी मुहल्ले में "भारतीय विद्यार्थी संघ" का जहाँ भारतीय खाना मिलता है एक रेस्तरा है । इस रेस्तरा में बहुत स्वादिष्ट भारतीय भोजन मिलता है । भल्ला पकौड़ी की चाट से लेकर रसगुल्ला कलाकन्द आदि सभी वस्तुयें मिलती हैं । पर तली हुई चीजों का कम से कम प्रयोग करना चाहिए क्योंकि वे चर्बी के तेल में तली जाती हैं । इंडिया हाउस में हमने दोपहर के दो बजे अपने यहाँ के दीवाली, होली, दशहरा आदि त्योहारों की कई फिल्में भी देखीं ।

तीन चार दिन हुये हमने हाइगेट सिमिट्री जाकर मार्क्स की समाधि भी देखी । बाहर निकलते ही लंदन की धुंध ने हमारा स्वागत किया और कुछ देर बाद इतना पानी बरसा कि हम बरसाती या छाता कुछ भी पास में न होने के कारण बिलकुल तर हो गए । किस्मत की मार कि लौटते समय रास्ता भी भूल गए । पूछते-पाछते भटकते हुए रात को ग्यारह बजे जब गीले कपड़ों में घर पहुँचे तो खूब डाँट पड़ी और अगले दिन घर के बाहर नहीं निकले ।

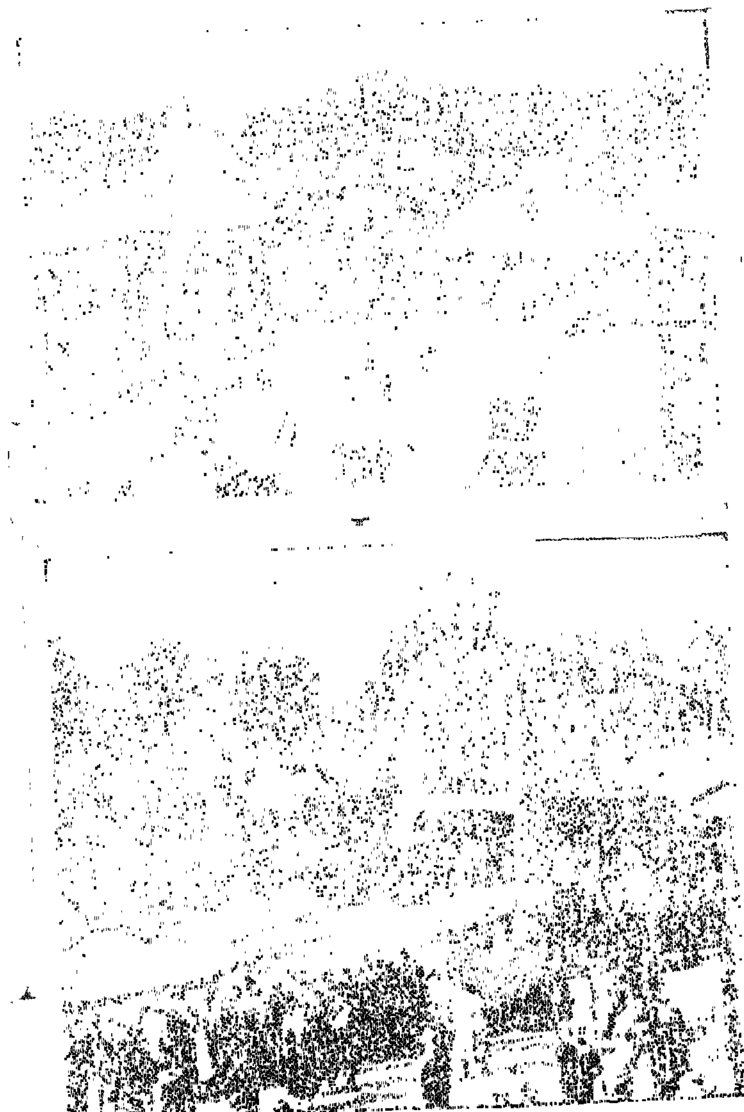
यहाँ की कम्युनिस्ट पार्टी के उप सभापति "रजनी पामदत्त जी से भी हमें मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। छोटा सा कमरा इधर-उधर दो कोनों में दो छोटी-छोटी मेजों पर कुछ कागज सुव्यवस्थित ढंग से रखे हुए, सामने दीवार पर हाथ का बनाया हुआ स्वर्गीय "जूलियस फूचिक" का चित्र और इन सबके बीच छोटी सी बेंत की कुर्सी पर बैठा हुआ दुबला पतला शरीर चश्में के सहारे अपने कार्य में संलग्न था । यही रजनी पामदत्त थे । लम्बा कद, पीला रंग पिचके हुए गाल सफेद बाल और चश्में लगे चेहरे पर चिन्ता और जिम्मेदारियों के बोझ की रेखायें उनके गिरे हुए स्वास्थ्य का आभास करा रही थीं और अन्त में मालूम भी यही हुआ कि

वे किसी पुराने रोग से ग्रसित हैं। पर उस अस्वस्थ शरीर में भी किसी प्रकार की लगन या उत्साह का अभाव दिखाई न पड़ा। नित नवीन भावनाओं को जन्म देता हुआ उनका हृदय और विचार शील मस्तिष्क मानो उनके सफेद बालों और अस्वस्थ चिन्हों का उपहास कर रहे हों। हम एक बंगाली युवक "दिलीप" के साथ यहाँ आए थे जो इनसे पहले से ही परिचित थे। उन्होंने हम सबसे बारी-बारी से हाथ मिला कर परिचय पूछा और यह जान कर बहुत प्रसन्न हुए कि हम भारत से युवक सम्मेलन में जाने के लिए ही आए हैं। तत्पश्चात भारत की कम्यूनिस्ट पार्टी के विषय में बातचीत करते रहे। पी० सी० जोशी को पुनः पार्टी में ले लेने की सूचना से वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें इस बात का खेद था कि बर्लिन सम्मेलन में आने वाले अनेक भारतीय युवकों को पासपोर्ट न मिलने से वहीं रुक जाना पड़ा। अन्त में उन्होंने सम्मेलन की सफलता और हिन्दुस्तान की उन्नति के लिए अपनी शुभकामनायें व्यक्त की और हम उनके सरल व्यक्तित्व की एक अमिट छाप लिए लौट आये।

अच्छा प्रभा अब पत्र बन्द करती हूँ। हम कुछ दिनों में ही "बर्लिन के युवक सम्मेलन" के लिये रवाना होने वाले हैं।

—प्यार

फेस्टीवेल आफ ब्रिटेन की चहल पहल



ज़ूरिच (स्विट्ज़रलैंड),
९ अगस्त, १९५१

आज नौ अगस्त है, पाँच अगस्त से "विश्व-युवक-सम्मेलन" शुरू हो गया, पर हम अभी लन्दन से "ज़ूरिच" तक ही पहुँच पाए हैं। कल रात को ही यहाँ आए हैं। अगर हवाई जहाज में 'प्राग' तक के लिए तीन सीट खाली मिल गईं और यहाँ की सरकार ने हमें वहाँ का टिकट देने में कोई आपत्ति न की तब तो ग्यारह-बारह ता० तक बर्लिन पहुँच जाने की आशा है, अन्यथा अन्य कोई साधन नहीं। प्राग का वीज़ा लंदन से लेकर आए हैं, केवल सीट की समस्या है।

लंदन से यहाँ तक पहुँचने में भी हमें किन-किन मुसीबतों का सामना करना पड़ा, कैसी-कैसी ऊल-जलूल अप्रत्याशित अड़चनें सामने आईं और इस सम्मेलन का विरोध करने वाली साम्राज्यवादी सरकारों ने किस प्रकार गैरकानूनी ढंग से हमें रोकने का प्रत्येक संभव प्रयत्न किया यह सब तो एक लम्बी कहानी है, जिसे तुम भारत आने पर मुझसे ही सुनना। इस समय तो संक्षेप में तुम्हारी जानकारी के लिए अब तक बर्लिन न पहुँचने के कुछ विशेष कारण ही बता देना उपयुक्त होगा।

हाँ, तो सम्मेलन में भाग लेने वाले लंदन के भारतीयों को मिला कर हम सब कुल १२५ भारतीय प्रतिनिधि थे। हमें "चैकोस्लोवाकिया" की राजधानी 'प्राग' तक पहुँचाने का प्रबन्ध यहाँ की "युवक सम्मेलन कमेटी" ने किया था। हमारे साथ जाने वाले कुछ ब्रिटिश, अफ्रीकन और सीलोनी प्रतिनिधि भी थे। हमारे कुछ साथियों को तो 'बातोरी' जहाज से चौबीस सितम्बर को ही रवाना कर दिया गया था और अब हमें पहली ता० की रात को चार्टर्ड हवाई जहाज द्वारा भेजने का प्रबन्ध कमेटी के सेक्रेटरी ने किया था। फ्रांस और प्राग के वीज़ा, सामान और टिकट आदि की हमारी सब जिम्मेदारी सेक्रेटरी

पर हो थी और इन सबके विषय में हमें उचित आदेश भी मिल गए थे। हमने निश्चय किया था कि पहली अगस्त की रात को एक बजे हम सब भारतीय प्रतिनिधि कुछ ब्रिटिश और अफ्रीकन प्रतिनिधियों के साथ चार्टर्ड हवाई जहाज द्वारा बर्लिन के लिए रवाना हो जायेंगे। अतः प्रोग्राम के अनुसार हम पहली अगस्त की रात को दस बजे सब सामान आदि लेकर अपने निश्चित स्थान पर आ पहुँचे। लैंडलेडी का आठ दिन का सब हिसाब किताब चुका दिया और चलते समय रुपये के मामले में उससे कुछ कहा सुनी भी हो गई। बड़ी मुश्किल से छुटकारा पाकर आए थे।

इस समय रात के बारह बज चुके थे। तेजी से बढ़ता हुआ रात्रि का अन्धकार धीरे-धीरे घना होता जा रहा था और कुछ बूँदा-बाँदी भी शुरू हो गई थी। हवा में आज प्रतिदिन की अपेक्षा कुछ अधिक शीतलता थी। जहाज के चलने में केवल एक घंटा शेष था। हम सब अपना-अपना सामान लिए और कोट, गुलूबन्द, सूटर आदि का सहारा लें सर्दी में सिकुड़े हुए हवाई अड्डे पर पहुँचाने वाली बस की प्रतीक्षा कर रहे थे। इसी समय कमेटी के सेक्रेटरी ने आकर हमें सूचना दी कि ब्रिटिश सरकार ने चार्टर्ड हवाई जहाज को जाने से रोक दिया है और पश्चिमी जर्मनी की सरकार ने भी हमारे जहाज को अपनी सीमा में से उड़ने की आज्ञा नहीं दी है। इसके अतिरिक्त कुछ स्थानों पर अमरीकी हथियारबन्द फौज बर्लिन जाने वाले युवकों को बन्दूकों की धमकी देकर रोकने के लिए खड़ी कर दी गई है। अतः हमारा जाना कल के लिए स्थगित कर दिया गया। हमारे निराश हुए चेहरों को देख सेक्रेटरी ने हमें आश्वासन देते हुए कहा कि कल तक कोई न कोई प्रबन्ध अवश्य ही कर दिया जाएगा जिससे हम पाँच अगस्त तक बर्लिन पहुँच सकें। दूसरे दिन जाने की आशा लिए हुए सभी यात्रियों ने अपने-अपने घर का रास्ता पकड़ा क्योंकि रात अधिक बीत चुकी थी। सब अपना-अपना सामान भी वहीं छोड़ गए। एक दिन के लिए बेकार में बोझ ढोने

से क्या लाभ ? हमारे सामने बड़ी विकट समस्या थी । कहीं भी रात काटने का ठिकाना नजर न आता था । लैंडलेडी का मकान पूरी तौर से खाली करके छोड़ आए थे और उससे भी-झपट हो जाने के कारण अब दुबारा वहाँ भी जाने का मुँह न था । इस समय सब होटलों के दरवाजे बन्द हो चुके थे और खुले भी होते तब भी आसानी से इतनी रात को कोई कमरा मिलना मुश्किल था । लंदन में स्थानाभाव की इस कठिनाई का अनुभव पिछले पच्चीस दिनों से करते चले आ रहे थे । अतः शरणार्थियों की-सी दशा का अनुभव करते हुए हम असमंजस में पड़े सोच रहे थे—कहाँ जायँ, क्या करें, किससे अपनी समस्या कहें, आदि-आदि । इतने में एक पंजाबी लड़की जिससे कुछ देर पहले ही हमारा परिचय हुआ था और हमने उसे पंजाबी भाषा में बातचीत करके अपनी सजातीयता का परिचय दिया । हमारी उक्त दयनीय स्थिति का अनुमान लगा हमारे पास आकर हमसे अपने घर चलने का अनुरोध करने लगी । यह लड़की पिछले दो वर्षों से लंदन में रह कर नर्सिंग का कोर्स पूरा कर रही है । उसकी ऐसी सहानुभूति और आत्मीयता देखकर हम गद्गद् हो गए और मन ही मन उसकी प्रशंसा करते हुए अपने रहने की समस्या सुलझ जाने की आशा करने लगे । पर ऊपर से व्यावहारिकता दिखाते हुए हमने कहा "रहने दीजिए, आपको कष्ट होगा । छोटी सी जगह में आप को परेशानी उठानी पड़ेगी," आदि-आदि । पर उसने हमारी इन दुनियादारी वाली बातों पर गौर न किया और साग्रह हमें अपने घर ले जाकर आराम से सुला दिया । इस समय रात के ढाई बज चुके थे । बिस्तर पर लेटते ही हम निद्रालोक में जा पहुँचे ।

सेक्रेटरी के दिलाए हुए आश्वासन और विश्वास के कारण दूसरे दिन जाने की उम्मीद लिए सब व्यक्ति फिर निश्चित स्थान पर पहुँचे । पर आज भी निराश होना पड़ा । अभी तक अनेक कोशिशें करने पर भी कोई प्रबन्ध न हो सका था क्योंकि ब्रिटिश और फ्रेंच सरकारें अपनी पूरी शक्ति के

साथ इस सम्मेलन का विरोध कर रहा था। अधिक से अधिक प्रतिनिधियों को रोक कर इसे असफल बनाने की साजिशें की जा रही थीं पर दूसरी ओर सम्मेलन में जाने वाले युवकों का जोश भी कुछ कम न था। वे हर मोर्चा लेने के लिए तय्यार थे। दोनों में बड़ी जबर्दस्त भिड़न्त हो रही थी। इन पूँजीवादी देशों ने परस्पर सांठ-गांठ करके पासपोर्ट, वीजा और यातायात के साधनों के द्वारा युवकों के मार्ग में अड़चनें उत्पन्न करके उनके उत्साह को ठंढा करने के लिये प्रत्येक संभव प्रयत्न किए। लंदन, फ्रांस, बेल्जियम, आस्ट्रिया, इटली आदि की सरकारों ने फासिस्ट नीति को अपना कर अपनी बर्बरता और क्रूरता का परिचय दिया। आस्ट्रिया में दो हजार ब्रिटिश और फ्रेंच प्रतिनिधियों के साथ अमरीकी सैनिकों ने जो व्यवहार किया वह नाजियों की बर्बरता से किसी प्रकार भी कम नहीं था। पन्द्रह दिन तक इन्सब्रुक में किस प्रकार इन शान्ति सैनिकों को रोक कर अमरीकी फासिस्टों ने गैरकानूनी रूप से उनका उत्साह तोड़ देना चाहा पर ये योद्धा उत्सव समाप्त होने से तीन दिन पूर्व बर्लिन पहुंच ही गए और उन्होंने विश्व के सम्मुख अपने निर्भीक साहस और शक्ति का परिचय दिया। कुछ व्यक्तियों को ब्रसल्स से वापिस लौटा दिया गया। फ्रांस के एक पुलिस अफसर ने कहा कि "न जाने क्यों लंदन की पुलिस इन व्यक्तियों को यहां तक भेज रही है और यहां से इन्हें वापिस लौटाने का गन्दा काम हमें करना पड़ रहा है।" कहते हैं कि एक फोटोग्राफर की सब फोटो फाड़ डाली गईं, उसका कैमरा छीन लिया और उसके साथ बड़ा कठोर एवं अशोभन व्यवहार किया गया।

साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा उपस्थित किया गया प्रत्येक विरोध इन यात्रियों के साहस और उत्साह को दुगना कर रहा था। प्रतिनिधियों ने बर्लिन पहुँचने के प्रायः समस्त मार्गों का प्रयोग किया। इन विरोधात्मक कार्यों ने पूँजीवादी शक्तियों की स्वार्थ-प्रवृत्ति को और भी अधिक स्पष्ट कर दिया जिसके परिणामस्वरूप ये प्रतिनिधि इनके

प्रति घृणात्मक भावनाओं को अनुभव करने लगे। हम पाँच अगस्त तक बर्लिन न पहुँच सके इसका हर व्यक्ति को बहुत दुःख था। भारत से लंदन तक की लम्बी यात्रा बिना किसी विघ्न बाधा के तै कर आए थे। पर लंदन से प्राग तक पहुँचना एक कठिन समस्या बन गई थी।

पर हमने निराश न होकर उत्सव की आखिरी घड़ी तक बर्लिन पहुँचने का निश्चय किया था। पेरिस, ब्रुसेल और विएना से जाने वाले रास्तों का अनुभव हो चुका था। अनेक प्रतिनिधियों को वापिस लौटाया जा रहा था। कितनों को वहीं रोक कर उनके साथ बड़ा निंदनीय व्यवहार किया जाता था। हमारे डेलीगेशन के लीडर को फ्रांस की सरकार ने रोक कर एक तंग कोठरी में तीन दिन तक बन्द रखा और उसके साथ बड़ा ही निंदनीय व्यवहार किया। बीच रास्तों से लौटे हुए ये युवक प्रतिनिधि अपनी आपबीती आकर हमें सुनाते और अपनी भूखी-प्यासी अवस्था का सारा हवाला देते थे। सचमुच इन अनेक युवक और युवतियों को बहुत ही भयंकर परिस्थिति का सामना करना पड़ा। भारत से आए हुए हम कुछ प्रतिनिधि इंडिया हाउस में श्री कृष्ण मेनन के पास भी अपनी शिकायत लेकर पहुँचे पर उनके बाहर होने के कारण वहाँ से भी निराश लौटना पड़ा। अनेक रास्तों की आजमाइश करके अब ज्यूरिच के रास्ते से प्राग पहुँचने की योजना बनाई गई। लंदन से पेरिस को पार करते हुए ज्यूरिच पहुँच कर प्राग तक जाने की यह एक नई सूझ थी और इसमें कठिनाई उत्पन्न होने की संभावना भी कम नजर आती थी क्योंकि स्विटजरलैंड की सरकार ऐसे मामलों में बहुत कम हस्तक्षेप करती है। यद्यपि यह काफी लम्बा रूट था और खर्चा भी अधिक बैठता था, पर इस समय तो बर्लिन पहुंचने का अदम्य उत्साह कार्य कर रहा था।

कुछ प्रतिनिधियों को इसी रास्ता से भेजने का निश्चय किया गया। एक साथ अनेक प्रतिनिधियों को एक ही स्थान पर जाते देख कर पुलिस के रोक लेने की आशंका अधिक थी। इसलिए सेक्रेटरी ने हमें कई ग्रुपों में,

विभाजित करके अलग-अलग भेजने का आयोजन किया। हममें से कितने ही युवक और युवतियों ने तो ऐसी विचित्र वेशभूषा और इस प्रकार की मुद्रायें बना ली मानों साथ-साथ यात्रा करते हुए भी हम परस्पर बिलकुल अपरिचित हैं। लंदन की एक बंगाली युवती ने कानों में बड़े-बड़े झुमके और बनारसी साड़ी पहन कर हिन्दुस्तान के किसी स्टेट की रानी बनने का ढोंग रचा और यही कारण था कि उसे इस प्रकार देखकर फ्रांस और लन्दन की पुलिस ने उस पर किसी तरह का सन्देह न किया और वह आसानी से वीजा आदि लेकर प्राग तक पहुँच गई। इस प्रकार भिन्न-भिन्न रास्तों के द्वारा अपने को एक दूसरे से अपरिचित सा प्रकट करते हुए सात अगस्त की रात को लन्दन से रवाना होकर फ्रांस पहुँचे और फ्रांस में दो घंटे ठहर कर अगली गाड़ी से 'जूरिच' की ओर चल दिए। यह पत्र मैं जूरिच से ही तुम्हें लिख रही हूँ। अब देखो, प्राग जाने के लिए कब सीट मिलती है और मिलेगी भी या नहीं इसका भी अभी तक कुछ निश्चय नहीं। अभी तो सभी कुछ अनिश्चित-सा है।

लंदन से जूरिच तक गाड़ी में लगभग डेढ़ दिन का सफर करने के पश्चात् भी हमने किसी प्रकार की थकावट या परेशानी का अनुभव नहीं किया। यहाँ की गाड़ियाँ भारत से बिलकुल भिन्न, साफ सुथरी तथा गद्देदार कुर्सियों से सजी हुई हैं। सीट के ऊपर लोहे की लम्बी सी जाली में सामान रखने की व्यवस्था है। खिड़की के पास वाली सीट के किनारे काठ का खुलने तथा बन्द होने वाला एक छोटा-सा खूबसूरत तख्ता लगा रहता है जिसे खोल कर लिखने या किताब रखने वाली मेज का काम लिया जा सकता है। एक सीट एक व्यक्ति के लिए सुरक्षित रहती है। रात को सब श्रेणी के लोगों के लिए सोने का स्थान निश्चित है। डिब्बे के बाहर सारी रेल में एक लम्बा-सा रास्ता चला गया है जिसके दोनों किनारों पर बाथरूम बने हुए हैं। यहीं खड़े होकर शीशों में से बाहर के दृश्यों का आनन्द आसानी से लिया जा सकता है। "केवल स्त्रियों के लिए" यहाँ कोई डिब्बा नहीं होता। रेल के दोनों ओर सभी

मकान सुन्दर, स्वच्छ तथा तीन-तीन चार-चार मंजिलों के दिखाई पड़ रहे थे। फ्रांस और ज़ूरिच के बीच में कोई खास बड़ा स्टेशन नहीं पड़ा। छोटे-छोटे स्टेशनों पर गाड़ी बहुत कम देर रुकी। इन स्टेशनों पर खोमचे वालों की चीख पुकार, कुलियों की भाग दौड़ तथा यात्रियों की भीड़-भाड़ नहीं देखी। केवल एक आधी दुकान छोटी-सी स्टेशन पर रहती है जहाँ कुछ फल, चाकलेट और बिस्कुट आदि मिल जाते हैं।

अच्छा—अब शेष अगले पत्र में



लंदन के एक पार्क का दृश्य



अंग्रेज घुड़दौड़ के शौक में संसार में अग्रणी हैं।

जूरिच, स्विटजरलैंड
१० अगस्त, सन् १९५१

प्राकृतिक सौन्दर्य और सुषमा का आगार यह स्विटजरलैंड विश्व भर में अपना एक पृथक अस्तित्व रखता हुआ प्रतीत होता है। इसका पिछला इतिहास भी अन्य देशों की भाँति युद्ध, मारकाट, विध्वंस आदि का इतिहास नहीं है। यह देश तटस्थ रहकर उत्तरोत्तर विकास की ओर अग्रसर हो रहा है। इस देश का विधान भी इसकी इसी मनोवृत्ति का परिचायक है। पूँजीवादी विचारधारा रखते हुए भी यह किसी दुर्बल पड़ोसी पर आक्रमण करके उसे हड़प जाने की लोलुप एवं स्वार्थ वृत्ति को पूरा करने का प्रयत्न नहीं करता। यह अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट रह कर शान्तिमय जीवन बिताना चाहता है। यही कारण है कि यद्यपि इसके पास कोई उपनिवेश नहीं है और प्राकृतिक साधनों का भी अभाव है फिर भी इसकी गणना दुनिया के धनी देशों में है। पिछले डेढ़ सौ वर्षों से इसने किसी युद्ध में भाग नहीं लिया। गत महायुद्ध के बाद योरोप में केवल स्विटजरलैंड की ही आर्थिक स्थिति संतोषजनक समझी जाती है। यहाँ पर इतनी पूँजी है कि वह सभी देशों को उधार देता है।

यह अच्छा ही हुआ कि हमें जूरिच के रूट से बर्लिन सम्मेलन के लिए भेजा गया। एक तो 'प्राग' तक का टिकट भी आसानी से मिल गया दूसरे इस मनोरम नगर को देखने का अवसर भी प्राप्त हुआ। हाँ, सम्मेलन में एक सप्ताह बाद पहुँचना मानस-पटल पर अवसाद की चादर बिछा देता है।

गुलाबी जाड़े का मौसम है। हम अपने होटल की चौथी मंजिल के कमरे की खिड़की के पास बैठे हैं। सबेरे का समय है पर यहाँ के गतिशील जीवन की दिनचर्या प्रारम्भ हो गई है। चौड़ी और साफ सुथरी सड़कों पर चमचमाती हुई मोटरें चिड़ियों की भाँति फुर्र से उड़ी चली जा रही

है। गहरे नीले रंग की ट्राम जाल सी बिछी अनेक लाइनों पर गड़गड़ाहट की ध्वनि करती हुई चल रही हैं। ट्रामों में आने जाने वाले यात्रियों का ताँता भी प्रारंभ हो गया है। स्त्री-पुरुष और बच्चे हाथों में बेग लटकाये दौड़ कर इन ट्रामों को पकड़ते हुये दिखाई दे रहे हैं। बसें बहुत कम हैं। केवल कूड़ा ले जाने वाली गाड़ियाँ ही अभी तक इधर से गुजरी हैं। सब्जी और फलों से भरी गाड़ियाँ भी होटलों और आहारगृहों के द्वार पर रुक कर उन्हें आवश्यक सामग्री दे रही हैं।

जरा ऊपर की ओर नजर उठाकर देखा तो भारत की शैल-सुन्दरी मसूरी की चोटियों का सा दृश्य नजर आने लगा। इस समय सबेरे के सात बजे हैं। बाल-रवि की हलकी सुनहरी रश्मियाँ इन हिमाच्छादित चोटियों का आलिंगन कर एक अनुपम दृश्य की रचना कर रही है। कुछ पहाड़ियाँ मटमैले रंग की और कुछ हरित परिधान में लिपटी हुई दिखाई दे रही हैं। लो यह तो बूँदा बाँदी शुरू हो गई। आकाश में छिटके हुए बादलों के एक छोटे से टुकड़े ने सूर्य को अपने आंचल में लपेट लिया और चारों ओर बदली सी छा गई। कुछ ठिठुरन भी बढ़ गई है और हमने पास रखे हुए कोट अपने कंधों पर डाल लिए हैं। अब सोच रहे हैं इस पानी में बाहर कैसे जा सकेंगे। पर थोड़ी ही देर में वह बाल-रवि बादलों की ओट में से अपना मुखड़ा बाहर निकाल कर झाँकने लगे, मानों किसी सुन्दरी ने अपना घूँघट उठा लिया हो। अबकी बार किसी भी बादल के टुकड़े ने उस पर आक्रमण करने का साहस नहीं किया। थोड़ी ही देर में बूँदा बाँदी भी बन्द हो गई और फिर वही हलकी सुनहरी रश्मियां चोटियों पर बिखरे हिमकणों से क्रीड़ा करने लगीं। प्रकृति का यह क्षण-क्षण, परिवर्तित होता हुआ रूप इस समय बहुत ही रमणीय प्रतीत हो रहा है। जिस स्विटजरलैंड की सौम्य वसुन्धरा अब तक हमारे लिए कल्पना लोक का विषय बनी हुई थी उसी की गोद में आज अपने को देख हृदय नव-नूतन भावनाओं से बना हुआ आलोड़ित हो उठा है। यह सुन्दर देश शान्त वातावरण, समृद्धिशाली जीवन स्वस्थ जलवायु

और इन सबके बीच यह बिखरा हुआ प्राकृतिक वैभव। भला इस इन्द्रपुरी में आ किसका हृदय भावुक न हो उठेगा। यहाँ शहर का-सा गतिशील जीवन तथा पहाड़ की शैलमालाओं का-सा सौन्दर्य—दोनों ही समान रूप से दृष्टिगत होते हैं।

हम नाश्ता करके बाहर टहलने के लिए निकल गए हैं। स्थान-स्थान पर बने बंगलों के नीचे रंग बिरंगे कुसुमों से सजी हुई सुन्दर क्यारियां हैं तथा बीच की गोलाकार भूमि हरी घास का मखमली परिधान ओढ़े है। अवकाश के समय इन बंगलों के व्यक्ति क्यारियों से घिरे इसी स्थान पर आकर मनोविनोद करते हैं। जिनके पास क्यारियां बनाने के ऐसे स्थान नहीं उन्होंने अपने कमरे की खिड़कियों को ही सुन्दर फूलों से साज शृंगार कर लिया है या पास के छोटे से बराडे को ही मिट्टी के गुलदस्तों से सजाकर प्रकृति के प्रति अपनी प्रेममयी भावनाओं को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है। कितनों ने स्थानाभाव के कारण अपनी छत को ही नानाप्रकार की फूल पत्तियों से सजाकर 'एरूफ गार्डन' बना लिया है। स्थान स्थान पर फूलों की इस सुन्दर शृंगार सज्जा के कारण सारा ज्यूरिच एक विशाल कुसुम कानन-सा प्रतीत हो रहा है। इससे यहाँ के व्यक्तियों की सौन्दर्य प्रियता का अनुमान सहज में ही लगाया जा सकता है।

चलते चलते पास के ही एक म्यूजियम में जा पहुँचे। यहाँ पुरानी वस्तुओं का सुन्दर संकलन देखा। पुराने बर्तन पुरानी, चित्रकारी, पुरानी मुत्तिकला तथा पुरानी पोशाकों को एकत्र करके यहाँ बहुत ही सुन्दर ढंग से सजाया गया है। सदियों पुराने गहने और घड़ियाँ भी देखीं। बाहर से देखने में यद्यपि यह म्यूजियम बहुत बड़ा मालूम नहीं होता पर अन्दर आकर एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा कमरा खुलता देखकर इसकी विशालता का अनुमान लगाना कठिन हो गया।

यहाँ से कुछ आगे बढ़े तो मालूम हुआ कि सामने की ऊँची पहाड़ी यहाँ का विशेष दर्शनीय स्थान है। यद्यपि काफी देर हो चुकी थी और भगवान भास्कर अस्ताचल की ओर प्रयाण कर रहे थे पर हम इस पहाड़ी

पर चढ़ने के लोभ को संवरण न कर सके। चढ़ते समय दोनों ओर हरे घने वृक्षों के समूह बीच में सँकरी पगडंडी और नीचे एकदम गहरा खड्ड देखकर कभी-कभी काश्मीर की चन्दनवारी का-सा दृश्य मालूम पड़ने लगता था। इस पगडंडी पर बीच-बीच में छोटी-छोटी सीढ़ियाँ बनी हुई थीं जिससे चढ़ने में सुगमता रहती थी। कुछ चढ़ाई फिर कुछ टेढ़ी मेढ़ी सीढ़ियाँ और फिर चढ़ाई इस प्रकार यह पहाड़ी रास्ता ऊपर की चोटी पर जाकर समाप्त होता है। चढ़ते चढ़ते हाँफ जाने के कारण कई बार बीच रास्ते में से ही लौट जाने का विचार किया पर काफी रास्ता तय कर आने के कारण ऊपर पहुंचने के मोह को रोक न सके और आखिरकार शिमले के जाकू की सी चोटी पर आ पहुँचे। बहुत ही सुन्दर तथा रमणीय दृश्य थे इस चोटी के। सुगन्धित समीर के शीतल झोंकों ने क्षण भर में सारी थकान दूर कर दी। यहाँ से ज़ूरिच का सौन्दर्य अपनी चरमावस्था पर पहुंचा हुआ दिखाई देता है। ऐसा आभास होने लगा मानों प्रकृति ने इस नगर को अपनी समस्त सुषमा का मुक्तहस्त से दान किया है। ज़ूरिच के बीचों बीच बहती हुई झील उस झील में फुदकती हुई छोटी-छोटी नावें, दोनों किनारों पर हास विलास करते हुए स्त्री पुरुष और बच्चे चारों ओर दीपावली की सी जगमगाहट और विज्ञापनों का प्रदर्शन करती हुई रंग विरंगी रोशनियाँ, सभी कुछ इस चोटी पर से बहुत सुन्दर लग रहा था। यहाँ पहुंच कर प्रकृति की सहज रमणीयता मानव को सांसारिक वासनात्मक वातावरण से ऊपर उठाकर अपना उपासक बना लेती है।

अब हम नीचे उतर कर ज़ूरिच के एक बड़े बाजार में आ पहुँचे हैं। साफ सुथरी चौड़ी सी सड़क और दोनों ओर दुकानों पर शीशे की अल-मारियों से सजी हुई विभिन्न प्रकार की वस्तुयें हैं। घड़ियों की दुकानों की तो एक लम्बी कतार सी चली गई है। अनेक प्रकार के फलों से सजी हुई दुकानों की शोभा भी कुछ कम नहीं है। छोटी छोटी बाँस की डालियों में आडू, अल्लूचे, खुमानी, अंगूर, सेब, प्लम्स, चेरी आदि फलों को बड़े ही

कलात्मक ढंग से सजाकर छोटी छोटी कीलियों पर टाँग दिया गया है इन डालियों पर कागज की पर्चियों में दाम भी लिखकर चिपका दिए गए हैं जिससे ग्राहक को मोलभाव करने में अपना तथा दुकानदार का समय नष्ट करने की आवश्यकता न पड़े। इन दुकानों पर अधिकतर स्त्रियाँ ही सब सामान बेचती हुई दिखाई देती हैं। घड़ी, जूते, फल, बिस्कुट आदि की दुकानों के अतिरिक्त साग सब्जी और अखबार तक भी स्त्रियों को ही बेचते देखा। यहाँ तक कि जूते में पालिश करने के लिए भी स्त्रियाँ ही दिखाई दीं।

भाषा की कठिनाई हमें यहाँ भी पड़ी पर पिछले कटु अनुभवों के परिणाम स्वरूप अब हमने एक छोटी सी डिक्शनरी जैसी पुस्तक खरीद ली थी जिसमें प्रतिदिन प्रयोग में आने वाले साधारण शब्दों का फ्रेंच, रशियन, जर्मन और अंग्रेजी—चार भाषाओं में अनुवाद था। अंग्रेजी समझने वाले यहाँ बहुत कम लोग मिले। शब्दों का उचित उच्चारण न करने के कारण हम यह पुस्तक खोलकर अपने आशय का शब्द दिखा देते थे जिसमें उन्हें समझने में बहुत सुविधा रहती थी और हमें भी संकेतों द्वारा दिमाग खाली नहीं करना पड़ता था। जूरिच में जर्मन भाषा बोली जाती है। स्विट्जरलैण्ड सब ओर से दूसरे देशों से घिरा हुआ है। इसका एक भाग फ्रांस की सीमा से लगा है, कुछ भाग जर्मनी और आस्ट्रिया की सीमा से लगे हैं और शेष इटली से। इन सब प्रान्तों में फ्रैन्च जर्मन और इटैलियन भाषायें बोली जाती हैं। स्विस लोग इन्हीं भाषाओं को अपनी मातृभाषा समझते हैं, थोड़ा बहुत उच्चारण में भेद हो जाता है।

जूरिच सबसे बड़ा व्यवसायी नगर है। मक्खन, पनीर, दूध, चाकलेट और घड़ियाँ काफी मात्रा में बाहर भेजी जाती हैं। झरने और नदियों की अधिकता के कारण बिजली अत्यधिक मात्रा में तैयार की जाती है। इसलिए यहाँ तो सदैव दीवाली की सी जगमगाहट रहती ही है यहाँ से दूसरे देशों में भी बिजली जाती है और बदले में द्रव्य आता है। यहाँ का सिक्का, फ्रैंक कहलाता है जो संसार के टिकाऊ सिक्कों में से है। कहते हैं फ्रैंक की साख अमेरिका के डालर से भी अधिक है। यहाँ चीजों के दाम

तेजी से ऊपर नहीं जाते। जीवनपयोगी वस्तुओं के दाम काफी कम हैं। साधारण व्यक्ति की आय छः सौ फ्रैंक से कम नहीं है। सारे देश में बिजली से काम लिया जाता है। प्रायः प्रत्येक घर में रेफरीजरेटर रेडियो आदि प्रत्येक प्रकार का सुविधाजनक बिजली का सामान पाया जाता है। जीवन स्तर के अनुसार ही यहाँ शिक्षा का स्तर ऊंचा है। बिना पढ़े लिखे लोग बहुत कम दिखाई देते हैं। स्विटजरलैण्ड में विदेशी व्यापार में सबसे अधिक घड़ियाँ महत्व रखती हैं। इसकी कुल निर्यात का पांचवाँ भाग घड़ियों का है। घड़ी निर्यात ही इसका सबसे प्रमुख उद्योग है।

इस प्रकार सुख समृद्धि और प्राकृतिक सौन्दर्य का केन्द्र यह ज़्यूरिच हमें परियों का सा देश जान पड़ा। यहाँ व्यतीत किया हुआ अल्प समय हमारी योरोप यात्रा में अपना एक विशेष स्थान रखता है। हम कल हवाई जहाज से प्राग के लिए रवाना हो जायेंगे और फिर प्राग से बर्लिन। अब तो बर्लिन से ही तुम्हें पत्र लिखूँगी।

पूर्वी बर्लिन (जर्मनी)
२० अगस्त, १९५१

लंदन, पेरिस, (स्विटजरलैंड और प्राग (चेकोस्लावाकिया की राज-धानी), की रम्य झाँकियों को देखते हुए आखिर हम बर्लिन सम्मेलन की उस उल्लासमयी दुनियाँ में आ पहुँचे जहाँ प्रेम और शान्ति के उद्‌गार अपनी चरम सीमा पर हैं जहाँ विश्व के हजारों कंठ एक साथ एक स्वर में ही नारा लगा रहे हैं और जहाँ आया हुआ प्रत्येक व्यक्ति हाथ मिला कर फ्रेंचाप (मित्रता) कह कर विश्व-मित्रता के सूत्र में बँधने का प्रयत्न कर रहा है। सचमुच बहुत ही सुन्दर वातावरण है इस सम्मेलन का। नाजियों द्वारा पददलित बर्लिन की वीरान धरती आज इतने मेहमानों को एक साथ अपनी गोद में पा फूली नहीं समा रही। पूर्वी बर्लिन की विशाल सड़कों पर नीली कमीज वाले बीस लाख "आजाद जर्मन युवक दल" के लड़के और लड़कियाँ तथा विश्व के एक सौ चार देशों से आए हुए युवक प्रतिनिधियों की सुन्दर टोलियों को देख कर एक स्वप्नरूप संसार का भ्रम होने लगता है। शायद यह पहला मौका है कि जर्मन व्यक्तियों को विश्व के सब लोगों और खास कर एशिया और अफ्रीका के लोगों को देखने और उनसे बात करने का अवसर मिला है। इसीलिए बाहर निकलते ही सैकड़ों बच्चों की भीड़ हमें घेर लेती है और वे सब अनुरोध भरी निगाहों से अपनी कापी पर हमसे दस्तखत कराने की प्रार्थना करने लगते हैं। अपनी इस इच्छा को पूरी होती देख उनका नन्हा सा हृदय कुसुम प्रसन्नता से खिल उठता है और वे हम से हाथ मिला कर "फ्रेंचाप" कह कर उचक-उचक कर हमें चूम लेने का प्रयास करते हैं। आनन्दातिरेक में कोई अपने गले का रूमाल उतार कर हमारे गले में बाँध देता है, और कोई अपनी जेब में से टॉफी निकाल कर हमारे मुँह में

डालने की कोशिश करता है। भाषा की विवशता के कारण हम बोल तो सकते नहीं, इशारों से ही उनसे बातें करते हैं।

"फ्रैंचाप" (मित्रता) का शब्द रात दिन बर्लिन के हर कोने में हमारा स्वागत करता है। फर्राटे से चली आती हुई बस, ट्राम या मेट्रो में बैठे हुए व्यक्ति खिड़कियों से हाथ हिला-हिला कर 'फ्रैंचाप' शब्द से ही हमारा स्वागत करते हैं। यहाँ तक कि उत्सव के प्रत्येक कार्यक्रम में 'फ्रैंचाप' का नारा ही सबसे अधिक प्रचलित नारा है। पूर्वी बर्लिन के जिस कोने में भी निकल जाओ वहीं की, दीवारों पर 'बर्लिन ग्रीट्स दि वर्ल्ड्स यूथ' (बर्लिन विश्व के नवयुवकों का स्वागत करता है) 'बर्लिन सैल्यूट्स आल यूथ आफ दी वर्ल्ड' (बर्लिन विश्व के समस्त युवकों का अभिवादन करता है) आदि अनेक रंग-बिरंगी रोशनियों से लिखे हुए दिखाई देते हैं। कैमरा लिए युवकों के झुण्ड के झुण्ड राह चलते हमें घेर कर जरा रुक जाने का अनुरोध करने लगते हैं। यहाँ के व्यक्ति हम भारतीयों के साँवले रंग और साड़ी के लिबास को देख दूर से ही लाखों की भीड़ में हमें पहचान लेते हैं और इंडिया, इंडियानो, इन्दो आदि शब्दों से पुकारने लगते हैं। सचमुच बहुत ही ममत्व भरा वातावरण है आज के इस बर्लिन सम्मेलन का। वात्सल्य से भरा हुआ यहाँ की स्त्रियों का हृदय इतने मेहमानों को एक साथ अपने शहर में देख पुलकित-सा हो गया है। दूर से देखते ही वे हमें चारों ओर से आकर घेर लेती हैं और गोदी में उठा कर एवं हृदय से लगाकर बार-बार चूमती हुई कभी-कभी तो आँसू बहाने लगती हैं। हमारे हाथ को अपने हाथों में लेकर बहुत खुश होकर कहती हैं कि आज तक उन्होंने ऐसा काला रंग कभी नहीं देखा। कोई हमारे लिए फूलों के गजरे बना कर लाती है और कोई फलों की डाली भेंट करती है। यहाँ की जर्मन स्त्रियाँ हमारी साड़ी को देखकर बहुत प्रसन्न होती हैं और आश्चर्य करने लगती हैं कि पाँच गज का टुकड़ा बिना कहीं से कटा सिला हम कैसे पहन लेती हैं। प्रतिदिन ही अनेक स्त्रियाँ हमारे पास साड़ी पहनने का ढंग पूछने आती हैं। एक दिन तो हमने अपनी दुभाषिया



१९५१ का बर्लिन में होनेवाला विश्व-युवक सम्मेलन

लड़की को अपनी सितारों वाली साड़ी और शीशे के काम वाला ब्लाउज पहनाया। उसके माथे पर बिन्दी, गले में माला तथा हाथों में अपनी चूड़ियाँ भी पहनाईं। बहुत सुन्दर लगने लगी वह इस भारतीय लिबास में। गोरी चिट्टी और गुदगुदा सी देह गुलाबी रंग की साड़ी में लिपटी हुई बिल्कुल तुम्हारी चीनी की गुड़िया-सी जान पड़ रही थी। वह बार-बार शीशे के पास जाकर अपना मुहँ देखती और खुशी से उछलती हुई हमसे आकर पूछती "आज मैं बिल्कुल हिन्दुस्तानी औरत मालूम पड़ रही हूँ न ?"

इस प्रकार राह चलते अपरिचित जर्मन युवक, युवतियों और बच्चों के द्वारा घिर जाना, बिना किसी परिचय के किसी के साथ गले मिलना, किसी का हाथ पकड़ कर नाचने लगना और किसी भी परदेसी को अपनी संगीत या नृत्य की टोली में शामिल करके शांति के गीत गाते हुए नाचने लगना उत्सव की सहज एवं स्वाभाविक घटनायें हो गई थीं। लाखों मील की दूरी पर बैठे इन व्यक्तियों के हृदय में हम भारतीयों के प्रति इतना स्नेह तथा अपनत्व है, इसका अनुमान आज जर्मनी की इस स्वतन्त्र भूमि पर पहुँच कर ही कर सके। कुछ स्त्रियों को मालूम हो गया कि हम भारतीयों चाय पीने के आदी हैं, यहाँ की कॉफी हमें रुचिकर नहीं। अगले दिन सवेरे ही एक बूढ़ी जर्मन स्त्री अपने दो बच्चों को साथ लिए चाय के दो डिब्बे बगल में दबाये दो मील की दूरी से पूछ-ताछ करती हुई हमारे पास पहुँची और हमसे चाय लेने का अनुरोध करने लगी। उस अपरिचित वृद्धा को देख पहले तो हम असमंजस में पड़ गये और सोचने लगे कि इतनी सवेरे हमारे पास इतनी दूर से, यह बेचारी बिना जान पहचान के क्यों आई। चाय के डिब्बों का उपहार भी हमारी कुछ समझ में नहीं आया। कुछ देर बाद बातचीत के दौरान में हमें मालूम हुआ कि उस वृद्धा को कल "सोवियत प्रदर्शनी" में किसी चीनी प्रतिनिधि से मालूम हुआ था कि भारत में कॉफी की बजाय चाय पीने का अधिक रिवाज है, विशेषकर वहाँ की स्त्रियाँ तो के कॉफी के नाम से नाक भौंह सिकोड़ती हैं। इसीलिए यह जर्मन स्त्री सवेरे

ही हम भारतीय स्त्रियों के लिए चाय के डिब्बे लेकर आई थी, कितनी गहरी आत्मीयता है यहाँ के व्यक्तियों में। उसके इस ममत्व को देख हम सभी गद्‌गद् से हो गए। बाद में हमें यह भी मालूम हुआ कि जर्मनी में चाय बहुत महँगी तथा कठिनाई से मिलती है।

आज पूर्वी बर्लिन के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक समस्त दिशाओं में शतशत कंठों से शान्ति के गीत और मित्रता के नारे सुनकर ऐसा आभास होता है मानो सारा विश्व मित्रता के एक सूत्र में बँधने का प्रण कर रहा है। बर्लिन की सड़कों पर रात दिन परदेसियों के झुण्ड के झुण्ड हाथ में हाथ डाले जिन्दगी के गीत गाते हुए दिखाई देते हैं। ऐसे ही स्नेह और ममत्वपूर्ण वातावरण में पाँच अगस्त को पूर्वी बर्लिन में इस महान् अन्तर्राष्ट्रीय उत्सव का उद्‌घाटन हुआ। एक सौ चार देशों से आए हुए पच्चीस हजार प्रतिनिधियों ने अपनी सुन्दर राष्ट्रीय वेष-भूषा में राष्ट्रीय झंडे हाथ में लिए जब गोल स्टेडियम के चारों ओर चक्कर लगाए तो बीस लाख जर्मन युवक और युवतियों की अपार भीड़ खुशी से उछल-उछल कर तालियाँ बजा कर उनका स्वागत करने लगी। बहुत ही सुन्दर दृश्य था इस जुलूस का। जिन्दगी मानो बाढ़ के समान बर्लिन की सड़कों पर बहने लगी थी। संध्या के झुटपुटे में इस सम्मेलन के उद्‌घाटन की कार्यवाही समाप्त हुई और रात को कुछ सांस्कृतिक कार्य-क्रम उपस्थित किए गए।

क्या लिखूं प्रभा, पन्द्रह दिन के इस महान् उत्सव का वर्णन पत्रों में करना असम्भव-सा प्रतीत होता है और यदि इसके प्रत्येक कार्य-क्रम की संक्षिप्त रूपरेखा तुम्हारे सन्तोष और जानकारी के लिए प्रस्तुत कर भी दूँ तब भी तुम इसकी आशातीत सफलता का अनुमान न लगा सकोगी, क्योंकि किसी उत्सव की भावनाओं और उसके उद्‌गारों को अभिव्यक्त करना बहुत कठिन होता है। प्रातःकाल नौ बजे से लेकर रात के दो बजे तक लगातार व्यस्त रहते हुए भी हम इस उत्सव के सभी प्रोग्रामों को नहीं देख सकते थे।

देखना सम्भव भी न था। इंटर डेलीगेशन मीटिंगें, सांस्कृतिक प्रोग्राम, नृत्य प्रतियोगितायें, प्रदर्शनियाँ, सरकस, जलूस, फुटबाल, हॉकी, ओपन एअर शो, बैले आदि अनेक दर्शनीय कार्य-क्रम भिन्न-भिन्न देशों के प्रतिनिधियों द्वारा प्रति दिन प्रदर्शित किये जाते थे। हम तो कभी-कभी यह निश्चय ही नहीं कर पाते थे कि किस प्रोग्राम को छोड़ कर किसमें जायँ क्योंकि सभी एक दूसरे को [illegible] देते जाते थे।

कुछ समझ में नहीं आता कि साम्राज्यवादी शक्तियों ने इस विश्व-उत्सव से इतना अधिक भयभीत होकर इसे असफल बनाने के अथक प्रयत्न क्यों किए। विश्व-शान्ति के लिए मित्रता की नींव को दृढ़ करने के पवित्र उद्देश्य को लेकर इस [illegible] सम्मेलन का आयोजन किया गया था। इसका लक्ष्य किसी मत का प्रचार या किसी का विरोध करना न था। संस्कृति तथा सभ्यता का पारस्परिक आदान-प्रदान कोई अनुचित बात नहीं। ड्रामे, थियेटर, प्रदर्शनी, सरकस, बैले आदि के द्वारा हमें अनेक देशों की विभिन्न कलायें देखने को मिलीं। हमारा उत्साह बढ़ा। हमें दूसरे देशों को देखकर आगे बढ़ने की प्रेरणा प्राप्त हुई। इसमें भला क्या गैरकानूनी बात थी जिसके कारण हमारी सरकार ने भी यहाँ आने वाले युवकों को पासपोर्ट देने से इन्कार कर दिया। अपनी सरकार की यह नीति हमारी समझ में नहीं आई। पर जब बर्लिन की वीरान धरती ने अपनी गोद में एक सौ चार देशों से आए हुए पच्चीस हजार युवक और युवतियों को देखा तो इसके चारों ओर के टूटे खंडहर भी शान्ति की आवाजों से गूँज उठे।

विश्व सम्मेलनों के इतिहास में यह पहला मौका था कि लंदन और फ्रांस से आने वाले भारतीयों के अतिरिक्त भारत से भी तेरह प्रतिनिधि इस उत्सव में सम्मिलित होने के लिए आए। इस युवक सम्मेलन का आरम्भ सर्वप्रथम १९४७ में चेकोस्लावाकिया की राजधानी प्राग में हुआ था। तब से हर तीसरे वर्ष यह सम्मेलन विश्व भर के नवयुवकों का आह्वान कर शान्ति की नींव को दृढ़ करता है। १९४९ में बुडापेस्ट में इस



सम्मेलन प्रेम, सामंजस्य और सहृदयता के वातावरण से ओत-प्रोत था

सम्मेलन ने बयासी देशों का प्रतिनिधित्व करके शान्ति और मित्रता का नारा बुलन्द किया था और आज १९५१ में बर्लिन का यह सम्मेलन एक सौ चार देशों से आए हुए पच्चीस हजार नवयुवकों और बीस लाख जर्मन युवक और युवतियों के कंठ से निकला हुआ शान्ति-स्वर विश्व के हर कोने में प्रतिध्वनित कर रहा है। 'प्राग' और 'बुडापेस्ट' के उत्सवों में हिन्दुस्तान से एक भी प्रतिनिधि नहीं जा सका। लंदन और फ्रांस के भारतीयों ने ही यहाँ का प्रतिनिधित्व किया। वारसा पीस कांग्रेस भी भारतीय प्रतिनिधियों से सूनी सी ही रही। इसीलिए तो आज के इस बर्लिन सम्मेलन में हिन्दुस्तान से आए हुए प्रतिनिधियों को देख यहाँ का बच्चा-बच्चा प्रसन्नता और आह्लादसे उछल पड़ता है।

दोपहर के खाने से पहले एक प्रतिनिधि मंडल दूसरे देश के प्रतिनिधियों को अपने यहाँ आमंत्रित करता था और परस्पर विचारों का आदान-प्रदान तथा विश्व-मैत्री की नींव दृढ़ होती थी। एक दिन हमारे निकट के पड़ोसी चीन ने जिसे आज नया चीन और लाल चीन के नामों से पुकारा जाता है सभी एशियाटिक देशों के प्रतिनिधियों को अपने यहाँ आमंत्रित किया। हम सोचने लगे यह हमारा वही पड़ोसी है जिसने गुलामी के बन्धनों को तोड़ कर चालीस करोड़ नारों अपने देश में लोकराज की स्थापना करके विश्व के सम्मुख अपनी शक्ति तथा साहस का परिचय दिया है। इसी चीन के विषय में एक दिन नेपोलियन ने कहा था "There lies a sleeping giant, let him sleep for when he awakes, he will move the world". (एशिया में एक बड़ा भारी देश सो रहा है उसे सोने दो क्योंकि जब वह उठेगा तो सारी दुनियाँ को हिला देगा) सचमुच ऐसा जान पड़ता है कि आज वह देव जाग उठा है और उसने अपने देश में एक नए लोकराज की स्थापना करके समस्त विश्व में तहलका मचा दिया है। आज हम नए चीन की नई जिन्दगियों से मिलने जा रहे थे। सभी बहुत खुश थे। तीन-तीन बसों में बैठकर हमारा पूरा भारतीय प्रतिनिधि मंडल पन्द्रह मील का सफर तय करके जहाँ की

उनके स्थान के निकट पहुँचा वैसे ही दूर से हमारी बसों को देखते ही सैकड़ों चीनी युवक और युवतियों ने "इण्डियन डेलीगेशन ज़िन्दाबाद" "इण्डिया चाइना दोस्ती ज़िन्दाबाद" आदि नारों से हमारा हृदय से स्वागत किया। चीनी युवतियों ने हमें गोदी में उठा-उठा कर बसों से उतारा और फूलों के गुलदस्ते भेंट करती हुई गले मिल मिलकर हमारे प्रति अपनी स्नेहमयी भावनाओं को व्यक्त करने लगीं। हम थोड़े से भारतीयों को सैकड़ों चीनी युवक और युवतियों ने चारों ओर से क्षणभर में ही घेर लिया और नाना प्रकार से हमारे प्रति अपने प्यार भरे उद्गारों को व्यक्त करने लगे। प्रभा! सचमुच बहुत ही सुन्दर दृश्य था इस प्रेममिलन का। जीवन से मानो प्रेम और ममता का अजस्त्र स्रोत फूट पड़ा था। सबसे अधिक मार्मिक दृश्य तो उस समय का था जब चीन और कोरिया की स्त्रियाँ गले लिपट कर एक दूसरे को चूमती हुईं भावावेश में आ आँसू बहाने लगती थीं। कोरियन व्यक्तियों की चीन के प्रति कृतज्ञता भरी भावनायें मानों आज आँसुओं के रूप में साकार हो उठी थीं और चीनी व्यक्तियों का कोरिया के प्रति सहानुभूति से भरा हुआ हृदय उमड़-उमड़ कर स्नेह की वर्षा कर रहा था। दोनों ओर से जी भर कर प्रेम का आदान प्रदान होता रहा। इस प्रकार सभी एशियाटिक देशों के प्रतिनिधि परस्पर एक दूसरे से मिल कर मित्रता की नई नींव डाल रहे थे। तत्पश्चात सीलोनी, जापानी, कोरियन, चीन, बर्मा, ईरान और भारतीय प्रतिनिधियों के भाषण हुए। सबने अपने-अपने देश की राजनैतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डाला और चीन की वीरता की जी खोल कर प्रशंसा की। सबने पेकिंग तक पहुँचने की अपनी कठिनाइयों का वर्णन भी किया। लगभग चार घण्टे तक सभी देशों में परस्पर विश्व-शान्ति को स्थापित रखने के लिए विचार विनिमय होता रहा। प्रतिनिधियों के भाषणों का अनुवाद अंग्रेज़ी तथा चीनी दोनों भाषाओं में किया जाता था। अन्त में सारा हाल "विश्व-शांति", "विश्व मित्रता" और माओत्सेतुंग की जयजयकार के नारों से गूँज उठा। सभी एशियाटिक प्रतिनिधियों का एक स्थान पर एकत्र होकर एक स्वर से एक

ही नारा लगाना और विश्व-मित्रता के सूत्र में बँधने का प्रण करना विश्व के इतिहास में आज पहली घटना थी। सहस्रों कंठों से निकले हुए शान्ति के गगन-भेदी नारे सुनकर ऐसा आभास होता था कि आज से दुनियाँ का कोई भी देश किसी के विरुद्ध हथियार उठाकर अपनी स्वार्थवृत्ति का परिचय नहीं देगा।

इस प्रकार हम भारतीय प्रतिनिधियों को सोवियत, कोरिया, अमेरिका रूमानियाँ, बलगारिया, जर्मनी आदि के प्रतिनिधियों ने अपने यहाँ आमंत्रित किया और सबने अपने-अपने देश की आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डाला। कोरियन और अमेरिकन प्रतिनिधियों का परस्पर गले मिलना और हाथ मिला कर "कैंचाप" कह कर एक दूसरे के प्रति अपनी सद्भावना का परिचय देना इस सम्मेलन की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी। दोनों ओर से प्रेमाश्रुओं की धारा बहने लगी थी। अमेरिकन शर्मिन्दा थे कि उनकी सरकार बेकसूर व्यक्तियों पर इतना अत्याचार कर रही है। इस प्रकार फ्रांस और वियतनाम, रूस और अमेरिका तथा ब्रिटेन और मलाया के प्रतिनिधि परस्पर मिले और घंटों विचारों का आदान-प्रदान होतारहा। प्रतिदिन होने वाली ये इण्टर डेलीगेशन मीटिंगें सम्मेलन में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती थीं।

बर्लिन के चौंसठ विशाल कला भवनों में सुन्दर रूप से सजी हुई विभिन्न देशों की कला प्रदर्शनियाँ मानव मनोभावनाओं के सजीव स्वरूप प्रदर्शित कर रही थीं। सम्मेलन की इन प्रदर्शनियों में चौंसठ देशों की प्राचीन तथा आधुनिक चित्रकला एवं मूर्तिकला के दर्शन होते थे। परसों दोपहर को हम सोवियत प्रदर्शनी देखने गए। चित्रशाला के तीन बड़े कमरे केवल आधुनिक पेंटिंग से सजे हुए थे। एक गाइड और दो दुभाषिये हमारे साथ थे। इनकी सहायता से हमने कितने ही चित्रों के बारे में जानकारी प्राप्त की। पाँच चित्रों पर कलाकारों को स्तालिन पारितोषिक मिला था। एक विशाल चित्र में स्तालिन की वर्षगाँठ का दृश्य बहुत ही सुन्दर था। यह चित्र तीन कलाकारों के द्वारा तीन वर्ष में तैयार किया गया था

और इसी चित्र पर इन कलाकारों को स्टालिन पारितोषिक भी प्राप्त हुआ था।

सम्मेलन की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती थी। इसमें विश्व भर के—हंगरी, पोलैण्ड, रूस, जर्मनी, चेकोस्लावाकिया, चीन बलगेरिया, इंगलैण्ड, भारत, डेन्मार्क, स्वीडन, आदि—प्रमुख देशों की प्राचीन तथा आधुनिक कलायें अपने-अपने देश का प्रतिनिधित्व कर रहीं थीं। इस प्रदर्शनी के कुछ चित्रों ने विश्व-ख्याति प्राप्त की थी, लगातार पाँच घँटे देखने के बाद भी हम इसके कुछ ही विभागों को देख सके। इतने देशों की कला एक ही प्रदर्शनी में एक ही स्थान पर देखने का हमारे जीवन में यह पहला अवसर था। अतः हम बहुत ही प्रभावित हुए। मानव-मनोभावनाओं के ऐसे सुन्दर एवं सजीव आकार आजकल कभी नहीं देखे थे। कितने ही व्यक्तियों को हमने इन प्रदर्शनियों में आँसू पोंछते देखा।

जर्मनी की पंचवर्षीय योजना की प्रदर्शनी भी खास इसी अवसर के लिए तय्यार की गई थी। यह प्रदर्शनी जर्मन व्यक्तियों की लगन, परिश्रम और उत्साह का परिचायक थी। गत महायुद्ध के पश्चात् दो वर्ष की योजना में किस प्रकार डेढ़ साल में ही कुछ फूटे खंडहर सुन्दर घर बन गए और सूखी बंजर भूमि हरी-भरी हो गई इसका बहुत ही सुन्दर प्रदर्शन नाना प्रकार के माडल (प्रतिरूपों) द्वारा उपस्थित किया गया था। सामने दीवार पर एक सुन्दर नक्शा टंगा था जिसमें जर्मनी का अन्य देशों के साथ व्यापार दिखाया गया था। खाने-पीने की वस्तुओं की मात्रा कितनी तीव्र गति से बढ़ गई, पहले नाश्ते में क्या होता था और अब क्या होने लगा, इन सब वस्तुओं का क्रमशः सुन्दर प्रदर्शन एक अलमारी में सजाई हुई खाद्य वस्तुओं द्वारा किया गया था। आगामी तीन वर्षों में तैयार की जाने वाली वस्तुओं के माडल, जिन्हें रूस तथा अन्य देशों से मँगाया गया है, सजे हुए थे। मशीने, रेलें, जहाज, इन्जन, स्कूल, यूनिवर्सिटी, इमारतें, फर्नीचर आदि अनेक वस्तुओं को एक निश्चित मात्रा में बनाने की योजना है। एक



१९५१ में अंतर्राष्ट्रीय युवक-सम्मेलन बर्लिन में भारतीय डेलीगेशन अपने राष्ट्रीय झंडे सहित सम्मिलित हैं। श्रीमती तारा याज्ञिक और सुश्री कौर अपने हाथों में राष्ट्रीय तथा शांति का झंडा लिए भारतीय डेलीगेशन का नेतृत्व कर रही हैं।

गाँव का माडल बड़ा ही सुन्दर था इसमें बच्चों के स्कूल, अस्पताल, खेलने-कूदने के मैदान आदि बनाये जायेंगे। खेती बारी करने के साधन, यूनिवर्सिटी, सुन्दर फर्नीचर और बड़ी-बड़ी इमारतें आदि अनेक आधुनिक वस्तुयें इस गाँव के माडल में प्रदर्शित की गई हैं। स्थान-स्थान पर होने वाली इन प्रदर्शनियों ने सम्मेलन में एक नई जान-सी डाल दी थी।

सम्मेलन का वह दिन भी सदा स्मरणीय रहेगा जिस दिन विश्व के समस्त देशों ने रोज़ा लुक्सेनवर्ग और कार्ल लिब्कनेक्ट की रीथ लेईंग सेरेमनी (पुष्पों की माला समर्पित करना) मनाई। ये दोनों कम्युनिस्ट पार्टी के वे प्रमुख नेता थे जिन्हें प्रतिक्रियावादी पार्टी ने एक समय एक ही साथ दोनों को शूट कर दिया था। इनकी कब्रें एक सुन्दर प्राकृतिक स्थान पर बनाई गई हैं। इस दिन सब देशों के प्रतिनिधि ए से लेकर जेड तक क्रमानुसार एक निश्चित स्थान पर एकत्रित हुए और बारी-बारी से अपने-अपने देश के नाम की फूलों की माला लेकर कतार में गये। प्रत्येक देश की माला रंग-बिरंगे नाना प्रकार के पुष्पों से गुँथी हुई थी और बीच में लाल झण्डे पर दोनों मृत व्यक्तियों के नाम लिखे हुए थे। यह माला इतनी भारी थी कि दायें बाएँ और बीच में से तीन-तीन व्यक्ति पकड़े हुए आगे चल रहे थे और शेष भीड़ उनके पीछे। सब देशों के प्रतिनिधि अपनी-अपनी जातीय पोशाक में थे। नीली, लाल, हरी, पीली, सफेद स्कर्टें और नकटाइयें भिन्न-भिन्न देशों का प्रतिनिधित्व कर रही थीं। लाखों की भीड़ कतार बाँधे माला हाथ में लिए शांत और गम्भीर मुद्रा में चली जा रही थी। दूसरी ओर शोक से भरे बिगुल की ध्वनि हो रही थी। बड़ा ही मार्मिक दृश्य था उस समय का। विश्व भर के हृदय आज उन नेताओं को श्रद्धा के पुष्प चढ़ाने जा रहे थे जिन्होंने मानवता के लिए अपने जीवन की आहुति दे दी थी। लगभग छः घंटे तक यह लम्बा जलूस दो मील की दूरी पार करके कब्र के समीप पहुँचा। वहाँ जर्मन नेता ने अपने भाषण में उन दोनों के प्रति श्रद्धा की भावनाएँ प्रकट कीं और जर्मनी का पुराना इतिहास दोहराया।

लगभग रात के आठ बजे तक हम अपने निवास स्थान पर पहुँचे और खाना खाने के बाद चेकोस्लावाकिया का सांस्कृतिक कार्यक्रम देखने चले गए।

इस प्रकार सम्मेलन का प्रत्येक दिवस हमारे हृदय पर अपनी अमिट छाप छोड़कर व्यतीत हो जाता और हम इसके अधिक-से-अधिक कार्यक्रम को देखने के लिए आकुल रहते।

इसकी अन्य महत्त्वपूर्ण घटनाओं के विषय में अगले पत्र में लिखूँगी। जर्मनी के छोटे-छोटे बच्चे तुम्हें अपना प्यार भेज रहे हैं।

बर्लिन,

२४ अगस्त, सन् १९५१

इस विराट सम्मेलन की आशातीत सफलता के बारे में अपने भावों को तुम्हारे सामने कैसे अभिव्यक्त करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। तुम स्वयं ही जरा उस स्वर्ग-तुल्य वातावरण की कल्पना करो जहाँ विश्व के एक सौ चार देशों से आए हुए पचीस हजार युवक प्रतिनिधि "विश्व-शान्ति" और विश्व-मित्रता" की उत्कट भावनाओं को लिए रंग बिरंगी विभिन्न वेष-भूषाओं में अपने-अपने देश का प्रतिनिधित्व कर रहे हों। एक सौ चार देशों की सर्वोत्तम कलायें जहाँ थियेटर, प्रदर्शनी, ड्रामों, आदि के रूप में एक दूसरे को चुनौती दे रही हों। राह चलते बिना जान पहिचान के—स्त्री पुरुष, युवक युवतियाँ बच्चे बूढ़े सभी बिना किसी भेदभाव के एक दूसरे के गले में हाथ डाले टोलियाँ बना-बना कर भावातिरेक में नाचने लगते हों। स्त्रियों का उमड़ता हुआ वात्सल्य, बच्चों का अगाध स्नेह तथा अतिथि सत्कार की उच्च भावनायें जहाँ अपनी चरमावस्था पर पहुँच गई हों। लाखों कंठ जहाँ एक साथ एक स्वर से शान्ति की भीषण गर्जना कर रहे हों उस सम्मेलन की महानता का अनुमान तुम मेरे इन पत्रों से नहीं लगा सकतीं। आज का इसका वायुमंडल सचमुच अवर्णनीय है। ऐसा आभास होता है मानो आज का बर्लिन विश्व भर की सभ्यता, कला तथा संस्कृति का आगार बन गया है। कहीं सोवियत बैले, कहीं चीनी सरकस, कहीं बलगेरियन ओपर्न ऐयर शो, कहीं जर्मनी की पंचवर्षीय योजना, कहीं हंगेरियन नृत्य और कहीं अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी आदि अनेक कलाएं मानो अपने-अपने देश की प्रतिष्ठा के रूप में खड़ी हैं। विश्व के कोने-कोने से युवकों की उमड़ती हुई बाढ़ को देख कल का वीरान बर्लिन जैसे आज आनन्द विभोर हो नाचने लगा है। जर्मन स्त्रियाँ हमारे गले में हाथ डाल कर मीलों



अर्जेन्टाइनी डेलीगेशन

दूर तक हमारे साथ चली आती हैं और टूटी हुई इमारतों, जले हुए गिरजाघरों, विध्वंस हुए मकानों और भग्नावशेष प्रासादों के फूटे खंडहरों को दिखाती हुई युद्ध का भयंकर स्वरूप प्रदर्शित करती हैं । सचमुच बहुत ही कारुणिक दृश्य है, गत महायुद्ध के । दूर-दूर तक चले गए खंड खंड हुए महल और उनके नीचे दब कर दम तोड़ने वाली कितनी ही बेकसूर जिन्दगियों की स्मृति आज भी इन जर्मन स्त्रियों के घावों को ताजा कर देती है, मीलों दूर तक ये दृश्य देखते चले आना मानव की पाशविक वृत्ति के विरुद्ध चीत्कार करने के अतिरिक्त और क्या हो सकता है । तीसरे महायुद्ध की आशंकाओं से भयभीत यहाँ का बच्चा-बच्चा आज विश्व-शान्ति के लिए आकुल और प्रयत्नशील जान पड़ता है । युद्ध के प्रति अपनी विरोधी भावनाओं को प्रकट करने के लिए ही आज इस शान्ति-सम्मेलन में सम्पूर्ण विश्व के युवक और युवतियों के समूह के समूह "वी वान्ट पीस" (हम शान्ति चाहते हैं) अथवा "ऐमी गो होम" (अमरीका अपने घर जाओ) आदि नारे लगाते हुए अनेक कठिनाइयों को पार करके यहाँ आ पहुँचे । शान्ति के लिए इनकी इतनी तीव्र भावनाओं को देखकर ही यह अन्दाज लगाया जा सकता है कि दुनियाँ का कितना बड़ा हिस्सा आज किसी भी देश के विरुद्ध हथियार उठाने का कितना विरोधी है ।

प्रदर्शनियों के अतिरिक्त कला का सुन्दर रूप, थियेटर, ड्रामे, सरकस बैले, नृत्य, संगीत आदि में भी देखने को मिला । सब प्रतिनिधियों के लिए दूसरे देशों की कला को देखने और जानने का यह सुनहरा अवसर था । बर्लिन के तीस विशाल थियेटर-भवनों में प्रतिदिन विश्व के सर्वश्रेष्ठ कलाकारों तथा अभिनेताओं द्वारा कभी ड्रामा, कभी सरकस, कभी नृत्य तथा संगीत आदि के प्रोग्राम दोपहर को तीन बजे से लेकर छः बजे तक तथा रात को नौ बजे से बारह बजे तक प्रदर्शित किए जाते थे । थियेटर भवनों के अतिरिक्त रात को भी प्रायः 'ओपन एअर शो' में हजारों की भीड़ इन ड्रामों को देखने के लिए जाता । इनके टिकट दोपहर को खाने के समय बाँट दिए जाते थे । सोवियत्, चीन, हंगरी, बलगेरिया, कोरिया

आदि के प्रोग्राम बहुत ही सुन्दर थे। दर्शकों का आह्लाद पांच मिनट तक लगातार तालियों की ध्वनि से प्रकट होता रहा। बलगेरिया की युवतियों की कलात्मक पूर्ण वेषभूषा में गुलाब के फूल का नृत्य सबको बहुत ही पसन्द आया। खुशी के आवेश में आ दर्शक कुर्सियों पर से उछल पड़ते और स्टेज पर फूलों की वर्षा करने लगते। सोवियत बैले विश्वभर के प्रोग्रामों में सर्वश्रेष्ट माना गया। इसकी कला पर जनता इतनी मुग्ध थी कि तीन-तीन बार देखकर भी किसी का जी नहीं भरा। रूस के नृत्य, गाने, ड्रामें आदि स्वतन्त्र देश में पनपने वाली सांस्कृतिक उन्नति का प्रत्यक्ष आभास करा रहे थे। कोरिया अपने नाटक में अपने देश का दर्द लेकर उपस्थित था। सफेद कपड़ों के आवरण में लिपटी हुई एक स्त्री अपने मृत शिशु को छाती से चिपटाये मंच पर आती है और करुण-क्रन्दन करती हुइ युद्ध का विकराल स्वरूप प्रदर्शित करती है। दूसरे दृश्य में एक अनाथ बालिका अपने मृत माता पिता की स्मृति में करुण विलाप करती है और अपने संगीत तथा अभिनय से अमेरिकन व्यक्तियों की दानवी करतूतों को प्रकट करती है। नाटक का अन्त युद्ध के कारण अनाथ बच्चों, बिलखती हुई विधवाओं तथा मातृविहीन होकर तड़पती हुई माताओं के रूप में दिखाया जाता है। कोरिया पर अमेरिकनों के प्रहार होते हैं मासूम निरपराध प्राणियों का संहार किया जाता है, सड़कों पर बच्चे बिलखते हुए जान देते हैं, वीर युवक गोलियों के शिकार होते हैं, युवतियां अपना सुहाग खो आश्रय विहीन हो जाती है और अमेरिकन सिपाहियों के द्वारा अपमानित की जाती हैं और अन्त [illegible] के ढेर और फूटे खंडहर दिखाई पड़ते हैं। कोरिया के इस दर्द भरे नाटक ने सभी के हृदय को द्रवित कर दिया।

चीन अपने दो वर्षों के महान् विकास को लेकर बर्लिन के स्टेज पर उपस्थित हुआ था। इसका नृत्य तथा सरकस कला की दृष्टि से बहुत उच्च थे। चीनी सरकस देखने के लिए जनता की उमड़ती हुई भीड़ पागल सी जान पड़ती थी। भारतीय प्रतिनिधियों द्वारा प्रदर्शित किया



युवक-सम्मेलन में चीनी प्रतिनिधियों का एक सांस्कृतिक कार्य-क्रम

गया तासीर देशों ड्रामा भी सबको बहुत पसन्द आया। इसमें प्राचीन रूढ़िगत बन्धनों को तोड़ नव निर्माण के लिए जागृति उत्पन्न करने का आह्वान था जो मूक अभिनय और संगीत के द्वारा बहुत ही सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त किया गया। इस ड्रामे को एक बार ओपन एयर शो तथा दो बार थियेटर भवनों में देखने का अवसर मिला। इसके संगीत और नृत्य की सभी ने प्रशंसा की। नृत्य, संगीत, और ड्रामों आदि में दिये गए पुरस्कार अधिकतर सोवियत और पूर्वी जनवादी देशों को प्राप्त हुए। इससे पता चलता है कि जनवादी देशों में कला को कितना महत्व दिया जाता है और स्कूलों, फैक्टरियों कालिजों और गांवों में सांस्कृतिक भवन खोलकर किस प्रकार कला उनके जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बना दी गई है।

हम सब भारतीय प्रतिनिधि यहां से पच्चीस मील की दूरी पर स्थित विश्वविख्यात "अन्तर्राष्ट्रीय पायनियर कैम्प" देखने गए। यहाँ विश्वभर के अनेक देशों से आए हुए बीस हजार बच्चे रहते हैं। विश्व-मित्रता का प्रतीक यह सुन्दर कैम्प संसार भर में अद्वितीय है। यहाँ बच्चों के रहने, खाने पीने, पढ़ने लिखने, खेलने, आदि का अत्यन्त ही सुव्यवस्थित प्रबन्ध है। प्रारम्भ से ही इनको स्वावलम्बी बनने की शिक्षा दी जाती है। अपनी दिनचर्या का सब कार्य ये स्वयं करते हैं। खाना बनाना, कपड़े धोना आदि से लेकर अपने कैम्प की सफाई तक करने की जिम्मेदारी इन पर है। यहाँ पर अनेक कलाओं का ज्ञान कराया जाता है। कला की उन्नति का अंदाज तो हम तब लगा सके जब एक नौ बरस के बालक को तूलिका और अनेक प्रकार के रंगों द्वारा सूर्यास्त की लालिमा का चित्र-बनाते हुए देखा। यह छोटा सा बालक अपनी चित्रकला में ऐसा व्यस्त था कि उसे हमारे वहाँ आने तक का आभास न हुआ। यह कैम्प चारों ओर से सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों से घिरा हुआ है। बड़ी दूर-दूर तक हरे भरे मैदान, ऊँचे ऊँचे वृक्षों के समूह के समूह कतार बांधे चले गए हैं। एक

ओर छोटा सा सुन्दर और स्वच्छ तालाब है जिसमें इन बालकों को तैरना सिखाया जाता है। इसके अतिरिक्त बैडमिंटन, हाकी फुटबाल आदि खेलने के पृथक पृथक ग्राउन्ड बने हुए हैं जहाँ बच्चे अपनी छुट्टियों का अधिकांश समय व्यतीत करते हैं। कहते हैं एक सौ बीस बच्चे रातोंरात पश्चिमी जर्मनी से भाग कर यहाँ चले आए। उन्हें चार घन्टे की लगातार पैदल यात्रा करनी पड़ी। हर बच्चे के मुख पर वीरता, उत्साह साहस, और स्वास्थ्य की लावण्यता स्पष्ट झलक रही थी।

यहाँ का सोवियत मेमोरियल भी एक दर्शनीय स्थान है। इसमें उन सात हजार रूसी वीरों की कब्रें हैं जिन्होंने गत महायुद्ध में प्राणों की बाजी लगाई थी। यह स्थान चारों ओर से हरे भरे बाग बगीचों से घिरा हुआ है। सामने बहुत ऊँचे पर एक गोल गुम्बद बना है जिसमें एक रूसी योद्धा की पत्थर की मूर्ति एक बालक को गोद में लिए हिटलर के झण्डे को "स्वस्तिका" को तोड़ रहा है। इस गुम्बद के नीचे मन्दिर के से रूप का एक गोलाकार कमरा है जिसमें दीवारों पर बने हुए उन बासठ देशों के व्यक्तियों के चित्र हैं जिन्होंने गत युद्ध में भाग लिया था। गोल दीवार के चारों ओर बड़े-बड़े अक्षरों में स्टालिन के ये शब्द लिखे हुए हैं। "सोवियत के वीरों ने अपने जीवन की बलि देकर फासिज्म का अन्त करके विश्व के सम्मुख एक अनुकरणीय उदाहरण उपस्थित किया है।" इसी कमरे के बीचों बीच एक शीशे की सुन्दर कलापूर्ण अलमारी में एक पुस्तक सजी हुई है जिसमें इन सात हजार वीरों के नाम स्वर्णाक्षरों से लिखे गए हैं। इस सोवियत स्मृति को देख भावी युद्ध की आशंका से एक बार फिर हृदय काँप उठा और विश्व शान्ति के प्रति प्रेम और भी गहरा हो गया।

विश्व भर के लेखकों और चित्रकारों को भी इस उत्सव में एकत्र होकर अपनी समस्यायें सुलझाने और एक दूसरे के दृष्टिकोणों को समझने का अवसर मिला। पुराने तथा अनुभवी लेखकों पाब्लो नेरूदा

नाजिम हिकमत आर्नल्ड ज्विग आदि ने अपने विचारों को संसार भर के बुद्धिजीवियों के सम्मुख रखा और समझाया कि किस प्रकार आज के नवयुवक लेखक और चित्रकार अपनी कला के द्वारा शान्ति आन्दोलन में भाग लेकर इसे आगे बढ़ा सकते हैं। जीवन के यथार्थवादी दृष्टिकोण पर भी खूब वाद विवाद और बहसें हुईं। सभी लेखकों को अपने विचारों को एक दूसरे के सामने प्रकट करने का अवसर मिला अतः कितने ही नवीन लेखकों के विचार काफी हद तक सुलझे और उन्होंने आज पहली बार अपने महान् उत्तरदायित्व का अनुभव किया। विश्व के चित्रकारों ने भी यथार्थवादी चित्रकला पर बहुत जोरदार बहसें की और अनेक प्रतिनिधियों ने पूरी स्वतंत्रता के साथ अपने विचार अभिव्यक्त किए। अन्तर्राष्ट्रीय चित्रकार संघ की नींव भी इसी सभा में पड़ी। इस प्रकार लेखकों और चित्रकारों के मस्तिष्क को सुलझाने और स्वस्थ बनाने में इस सम्मेलन ने महत्वपूर्ण योग दिया।

विश्व के महिला जगत की शक्ति और सहयोग का प्रत्यक्ष अनुभव हर व्यक्ति को आठ तारीख "महिला दिवस" वाले दिन हुआ। संसार भर की महिलाओं ने अपनी राष्ट्रीय वेष भूषा में अपने अपने देश के झंडे हाथ में ले शान्ति के गगनभेदी नारे लगाते हुए जब अपने विशाल जुलूस का प्रदर्शन किया तो सब देशों के प्रतिनिधि संसार की इस अमूल्य निधि को देख आश्चर्य चकित से रह गये। समाज के जिस वर्ग को अधिकार विहीन कर उपेक्षित दृष्टि से देखा जाता है उसी वर्ग की आज असीम शक्ति और संगठन को देख सब प्रतिनिधियों का विस्मय सागर में डूब जाना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। इस समय उनके विराट् जलूस को देख ऐसा प्रतीत होता था कि शान्ति आन्दोलन की तीव्र भावनायें पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक बलवती है क्योंकि युद्ध के भीषण परिणामों से वे अनभिज्ञ नहीं। युद्ध के खतरे से सचेत हुई ये स्त्रियां आज अपनी पूरी शक्ति के साथ शान्ति आन्दोलन में भाग लेकर इसे आगे बढ़ा रही हैं। जलूस के पश्चात् इन स्त्रियों की एक आम सभा

हुई जिसमें जनवादी महिला सम्मेलन की मन्त्राणी वैया कुतिरिये ने अपने भाषण में स्त्रियों के शान्ति आन्दोलन का महत्व और उनकी जिम्मेदारी से परिचित कराया। इस सभा की सबसे उल्लेखनीय चर्चा फ्रांस की सर्वप्रिय युवती रेमोंदिया का अभूतपूर्व सम्मान और उसके प्रति सबकी सद्भावनायें थीं। यह वही फ्रांसीसी वीरांगना थी जो पिछले वर्ष वियत नाम के लिए शस्त्र ले जाने वाली गाड़ी के नीचे लेट गई थी और गाड़ी को उलटा वापिस जाना पड़ा था। इस युवती को कंधे पर बिठा कर तालियाँ बजा बजा कर सभा के चारों ओर घुमाया गया और सबने इसके ऊपर फूलों के गुच्छे उछाल कर अपनी श्रद्धा भरी भावनाओं को प्रकट किया। विश्व भर की महिलाओं की यह विराट् सभा और इसमें महिला सम्बन्धी अनेक विषयों पर वाद-विवाद विश्व के महिला इतिहास में महत्व-पूर्ण घटना थी। सभा का अन्त सब महिलाओं द्वारा अपने-अपने देश के शान्ति आन्दोलन को दृढ़ करने की प्रतिज्ञा से हुआ। आज इन महिलाओं ने विश्व भर के झण्डों के नीचे एकत्र होकर एक नवीन विश्व मैत्री को जन्म दिया था।

उत्सव के दिन तेजी से बीत रहे थे और उसके प्रवाह में हमारी उल्लास भरी दुनियाँ का अन्त भी निकट आ रहा था। आज इसका तेरहवाँ दिन था। प्रातः काल नाश्ता करने के बाद मैं और तुम्हारी मम्मी बाहर जरा दूर टहलने निकल गए क्योंकि प्रोग्राम नौ बजे प्रारम्भ होना था। रास्ते में एक जर्मन नवयुवक, हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर आकृति, गोरा चिट्टा रंग, अवस्था होगी लगभग चौबीस वर्ष की, हमें दूर से देखते ही लपका हुआ हमारे पास आया और हमसे अपने घर चलने का अनुरोध करने लगा। हम कुछ सकपकाये। न जाने के लिए टालमटोल करने लगे। राह चलते बिना जान पहचान के किसी अपरिचित व्यक्ति के घर जाने में हिचक होना स्वा-भाविक ही था। भाषा की विवशता के कारण उसका हमें अपने घर ले जाने का आशय भी हमारी समझ में नहीं आया। पर अन्त में उसके बार बार स्नेह भरे अनुरोध को हम टाल न सके और उसके साथ हो लिये। यद्यपि

मन में नानाप्रकार की संशकित भावनायें उत्पन्न हो गई थीं और हम दोनों ही एक दूसरे को दोषी ठहरा रही थीं। घर पहुँचे तो उसकी बुढ़िया माँ हमें देख मानों निहाल हो गई। बड़े स्नेह से हमारे गले मे हाथ डाल हमें अन्दर ले गई और नानाप्रकार से कभी चाकलेट और बिस्कुट खिला कर कभी हमें अपनी गोदी में बिठा कर चूमती हुई अपनी स्नेहमयी भावनाओं को अभिव्यक्त करने लगी। हमें ऊपर छत पर ले जाकर उसने अपना "रूफ गार्डेन" दिखाया। सारा घर बहुत ही साफ सुथरा और सुव्यवस्थित ढंग से सजा हुआ था। बाहर लॉन न होने के कारण इन्होंने अपनी छत को ही फूलों के गमलों से सजा कर बगीचा सा बना लिया था। जब वह युवक हम दोनों को ऊपर छत वाले एकान्त कमरे में ले गया तब तो हम और भी घबड़ाईं। अब तक उसके तात्पर्य को न समझ सकी थीं। कमरे में प्रवेश करते ही जब चारों ओर की रोशनी से हमारी आंखें चौंधियाने लगीं और सामने एक बहुत बड़ा कैमरा रखा हुआ दिखाई दिया तब सारा रहस्य खुला और हमारी शंका दूर हुई। उसने हमारे कितने ही पोज साथ में और अलग अलग उतारे। उसकी माँ से हमें मालूम हुआ कि वह बहुत कुशल फोटोग्राफर है और उसे बचपन से ही इस कला का शौक रहा है। प्रिंटिंग तथा डेवलपिंग भी वह स्वयं ही करता है। आज वह हम भारतीय स्त्रियों की फोटो उतार कर बहुत खुश था। ब्राउन और काले रंग के व्यक्तियों के प्रति जर्मन व्यक्तियों की कितनी उत्सुकता है इसका अन्दाज आज उस युवक की खुशी को देखकर लगाया जा सकता था।

इसी दिन रात को कामनवेल्थ देशों के प्रतिनिधियों की सभा हुई जिसमें ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, भारत, पाकिस्तान सीलोन आदि ने भाग लिया। मलाया के प्रतिनिधि का भाषण बहुत प्रभावशाली था। इस सभा की सबसे प्रमुख घटना मलाया तथा ब्रिटेन के प्रतिनिधियों का परस्पर मधुर मिलन था। जब ब्रिटेन के डेलीगेशन ने मलाया प्रतिनिधि को अपनी प्रेम और दोस्ती की एक भेंट दी और कहा कि ब्रिटेन के युवक मलाया के स्वतंत्रता आन्दोलन में उनका साथ देंगे तो सारा हाल तालियों की ध्वनि

से गूँज उठा। इसी प्रकार औपनिवेशिक और अर्द्ध औपनिवेशिक देशों ने भी अपनी सभायें की और सबने अपने-अपने देश की स्थिति का वर्णन किया।

बारह अगस्त का दिन इस सम्मेलन का सबसे अधिक महत्वपूर्ण दिन था। इस दिन बीस लाख जर्मन युवक और युवतियों ने रंग बिरंगी कलात्मक पूर्ण पोशाकों में युद्ध विरोधी नारे लगाते हुए "उण्टर डेन लिंडन" बर्लिन की सबसे विशाल सड़क पर संगठित रूप से मार्च करके अपनी शक्ति तथा एकता का परिचय दिया। यह मार्च प्रातः छः बजे से लेकर सायंकाल पाँच बजे तक लगातार बर्लिन की विशाल सड़क पर होता रहा। विश्व के अनेक देशों से आए पचीस हजार प्रतिनिधियों की अपार भीड़ तथा जर्मनी की जनता सड़क के दोनों ओर दाएं बाएं बैठी नारे लगा कर तथा तालियाँ बजा-बजा कर अपने मन का हर्ष प्रकट कर रही थी। आकाश चुम्बी झण्डे हाथ में लिए युवकों की कतारें, मकान बनाने वाले मजदूर, फैक्टरी के वर्कर खेतों के किसान, स्कूलों के बच्चे, यूनिवर्सिटी के युवक, खेलों में भाग लेने वाले खिलाड़ी आदि विभिन्न क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हुए ये बीस लाख जर्मन युवक भिन्न-भिन्न पोशाकों में बड़े बड़े शान्ति प्रिय नेताओं के चित्र हाथ में लिए "फ्रेंचाप" "अनी गो होम" और विश्व शान्ति के नारे लगाते हुए अपनी अपार शक्ति और संगठन का परिचय दे रहे थे। ओह! सचमुच इस विराट जलूस की अपार शक्ति का अंदाज लगाना मुश्किल था। युवकों का ऐसा संगठन, एकता और शान्ति के लिए मन के उद्गारों के ये विभिन्न स्वरूप हमने तो आजतक कभी नहीं देखे थे। जिस उण्टर डेन लिंडन पर एक दिन नाजी सेनाएँ युद्ध के लिए मार्च किया करती थी आज वहीं बीस लाख जर्मन शान्ति सैनिकों ने युद्ध के प्रति अपनी नफरत भरी भावनाओं को प्रकट किया था। इस जलूस में चालीस हजार पश्चिमी जर्मनी के युवकों ने भी भाग लिया था और यदि वहां की पुलिस उन युवकों को बन्दूकों के डर से न रोकती तो और कितने हजार युवक इस जलूस में सम्मिलित होकर अपनी एकता का परिचय देते। मंच पर यहाँ

के सर्व प्रिय नेता "विलियम पीक" (जर्मनी के प्रेसीडेण्ट) और अन्य प्रमुख व्यक्ति सारा दिन खड़े इन युवकों को सलामी देते हुए अपने देश की इस अमूल्य शक्ति को देख हर्षोन्मत्त हो रहे थे। ये बीस लाख जर्मन युवक एक स्वर से नारे लगाते हुए मानो विश्व से कह रहे थे कि अब यह हिटलर का पैशाचिक जर्मनी नहीं रहा अब तो विलियम पीक का जनवादी जर्मनी फासिज्म के सभी चिह्नों को मिटा कर विश्व-मित्रता के एक सूत्र में बंधने का प्रण कर रहा है। सम्मेलन का यह दिन जर्मनी के युवक इतिहास में सदा याद रहेगा।

उत्सव के दिन और रातें हमारे हृदयों पर अपनी अमिट छाप छोड़ती हुई तेजी से गुजरती गई और यहाँ आया हुआ हर एक प्रतिनिधि इन बिखरी हुई खुशियों को समेटने में ऐसा संलग्न हुआ कि समय की गति को भी भूल बैठा। आज अगस्त की उन्नीस तारीख सम्मेलन की अंतिम घड़ियों की सूचना दे रही थी। प्रातःकाल जैसे ही हम सोकर उठे बाहर दरवाजे पर बैंड बजाते हुए तथा दोस्ती के नारे लगाते हुए सैकड़ों जर्मन युवक, युवतियों और बच्चों की अपार भीड़ हमारे स्वागत के लिए खड़ी दिखाई दी। आज हमारे यहाँ इनका आगमन अपने मेहमानों से इनकी अन्तिम मुलाकात थी, यह जानकर हमारा हृदय द्रवित हो गया। कल सबेरे ही ये सब अपने-अपने घरों को लौट जाने वाले थे। सबके हृदय बिछुड़ जाने की मार्मिक भावनाओं को लिए थे। हमारे बाहर निकलते ही सैकड़ों की भीड़ ने हमें चारों ओर से घेर लिया और हमें नाना प्रकार के उपहार देकर गले लगा-लगा कर विदा होने की कारुणिक भावनाओं को प्रकट करने लगे। कितने ही बच्चे हमसे चिपट कर सुबक सुबक कर रो रहे थे। कितने ही हमारे समीप आकर हमसे हाथ मिलाकर "मोंचाप" कर रहे थे। अनेक बच्चे अपने हाथ के बनाए हुए मिट्टी के खिलौने और रूमाल आदि भारतीय बच्चों के लिए उपहार स्वरूप भेंट कर रहे थे। प्यार और अपनत्व भरे ये उपहार क्या जीवन में कभी भुलाए जा सकते हैं। प्रेम भरी भावनाओं से भरे वे दृश्य

सचमुच बहुत ही मार्मिक थे। तत्पश्चात एक विशाल हाल में आकर जर्मन व्यक्तियों ने विदाई के गीत गाए और जुदाई की भावनाओं से भरे हृदय-स्पर्शी भाषण दिए। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे इस नई दोस्ती को सदा याद रखेंगे और हमेशा एक दूसरे का साथ देते रहेंगे। भारतीयों ने भी अपने भाषण मे जर्मन व्यक्तियों के प्रति असीम कृतज्ञता भरी भावनायें प्रकट की और उनके इतने आदर और सम्मान के लिये हृदय से धन्यवाद दिया। हमारे लीडर ने अपने ओजस्वी भाषण में कहा कि सम्मेलन के पन्द्रह दिन हमारे जीवन की एक अमर याद बन गई है। यहाँ हम दोनों देशों में जो दोस्ती की नींव पड़ी है उसे सैकड़ों अणुबम भी नहीं तोड़ सकते। "इण्डिया जर्मनी दोस्ती जिन्दाबाद" "विश्व शान्ति-जिन्दाबाद" आदि नारों से सभा की समाप्ति हुई और सबने आँखों में आँसू भरे हमसे अन्तिम बिदा ली।

इसी दिन दोपहर को चार बजे सब देशों के प्रतिनिधियों का राष्ट्रीय पोशाक पहन कर जलूस निकलना था। अतः सभी अपनी तैयारी में मग्न थे। कोई किसी से कुर्ता उधार मांग रहा था तो कोई अपनी अचकन ब्रुश से साफ़ कर रहा था। प्रत्येक प्रतिनिधि अपनी राष्ट्रीय पोशाक में था। यह जलूस सम्मेलन का सबसे अन्तिम प्रोग्राम होने के कारण सब देशों का परस्पर अन्तिम मिलन था। जर्मन परिवार प्रातः काल से ही सड़कों के दोनों ओर किनारों पर वृक्षों पर, बिजली के खम्भों पर और मकानों और घरों की छतों की खिड़कियों पर विश्व के युवकों के इस विराट जलूस को देखने के लिए और उन्हें विदा देने के लिए बैठ गए थे। बीच में भीड़ में से निकल कर कभी कोई बच्चा हमें फूलों का गुलदस्ता भेंट कर जाता कभी कोई युवक आकर हाथ मिलाकर अन्तिम 'फ्रेंचाप' करता और कभी दौड़कर भीड़ मे से आती हुई युवती भावावेश में भर हमारा चुम्बन ले लेती। भीड़ के कारण ऊपर बैठे हुए व्यक्ति खिड़कियों में से रूमाल हिला हिला कर हमें अन्तिम विदा दे रहे थे। कोरिया के प्रतिनिधियों को देखकर सब व्यक्ति अपने पूरे जोश के साथ जोर-जोर से तालियाँ बजाने

लगे और "फ्रे चाप" के गगनभेदी नारों से उनके साथ अपनी अटूट मैत्री का परिचय देते थे। बर्लिन की बड़ी बड़ी सड़कों का चक्कर लगाता हुआ यह विशाल जलूस मार्क्स एंजिल प्लाज पर आकर समाप्त हुआ। यहाँ एक आम सभा की तैयारी की गई थी। इस सभा में विलियम पीक और जाक देनिस आदि नेताओं के भाषण हुए। उत्सव की आश्चर्यजनक सफलता पर विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों ने जनवादी जर्मन सरकार और 'आजाद जर्मन युवक दल' को बधाई दी क्योंकि उत्सव की सफलता का श्रेय सबसे अधिक इन्हीं को था। फिर हर देश के प्रतिनिधियों ने सौगन्ध ली कि वे विश्व के जिस कोने में भी होंगे शांति के लिए प्रयत्न करेंगे। सभा के समाप्त होने के पश्चात् लाल, पीली, नीली, हरी, गुलाबी, आदि अनेक रंगों की आतिशबाजियों से दिशायें जगमग करने लगीं और तोपों की सी गड़गड़ाहट करने वाले पटाखे छोड़े गए। यह जर्मन लोगों की अपने मेहमानों के प्रति अन्तिम सलामी थी।

इस रात कोई नहीं सोया। सोता भी कैसे,क्यों कि यह बर्लिन सम्मेलन की आखिरी रात थी। सारी रात, बर्लिन की सड़कों पर बर्लिन के बाजारों में अलेक्जेंडर प्लास मार्क्स एंगल्स प्लास और ब्यानमान प्लास आदि में नृत्य और संगीत की ध्वनियाँ गूँजती रहीं। कहीं भी कुछ प्रतिनिधियों को जाते देखकर जर्मन लोगों की टोली उन्हें घेर लेती और उन्हें बीच में खड़ा कर चारों ओर घुमाकर गाते हुये उन्हें विदा देती। भीड़ के कारण हम अपने साथियों से बिछुड़ गए और उन्हें खोजने की कोशिश करने लगे। इतने में ही जर्मन युवक और युवतियों की एक ऐसी ही टोली ने हमें घेर लिया और सारी रात कभी हाथ पकड़ कर घेरा बना कर, कभी बीच में ले जाकर और कभी आवेश में आकर गले में हाथ डाल हमारे साथ गाते तथा नृत्य करते रहे। सारी रात चारों ओर से 'फ्रे चाप' की आवाजें सुनाई दे रही थीं और सब लोग डायरियों में एक दूसरे के पते लेकर पत्र लिखने के वादे कर रहे थे। प्रभा, सचमुच सम्मेलन की इस आखिरी रात के

दृश्य अत्यन्त ही मार्मिक और द्रवित कर देने वाले थे। सबके दिल पिछले पन्द्रह दिनों की स्मृतियों से भरे हुए थे और उन दिनों की बनाई हुई एक नई खुशहाल दुनिया को छोड़ने में सभी को दुख हो रहा था। रात भर स्त्री पुरुषों और बच्चों के झुण्ड के झुण्ड बर्लिन की सड़कों पर नाचते गाते और चक्कर लगाते रहे। उस दिन रात भर रेलें और बसें चलती रहीं और फिर सवेरा होते-होते कल का चहकता हुआ बर्लिन क्षण भर में ही वीरान-सा हो गया।

प्यार—

विश्व-सम्मेलन की समाप्ति का पहला सबेरा। चारों ओर सन्नाटा, नीरवता, स्तब्धता और शून्यता। कल की चहकती हुई दुनिया आज सुनसान हो गई। "फ्रैन्ड शिप" कहकर हाथ मिलाते हुए सुन्दर बच्चे, हस्ताक्षर के लिये चारों ओर से घेर लेने वाली भीड़, इंदो, "इंदियानो कहकर हमें राह चलते पहिचान लेने का परिचय देने वाले परदेसी, हमारे मार्ग में पलकें बिछाने वाली सुदूर देशों से आई हुई हमारी बहनें और हमें चूम-चूम कर गोद में उठा लेने वाली जर्मन स्त्रियां, सब कुछ क्षण भर में ही अतीत के धूमिल आवरण में विलीन हो गया। सौन्दर्य और मधुरिमा का मुक्त-दान करती हुई प्रकृति भी अपने कल के दिनों को याद करके शोकमग्न सी प्रतीत हो रही थी। अब वे शान्ति के नारे "फ्रैन्ड शिप" की आवाजें और "एमी गो होम" (अमेरिका अपने घर जाओ) के नारे सुनाई न पड़ते थे। अब लहराते हुए झण्डे और कबूतरों के चित्र भी समाप्त हो गए थे। स्वर्गीय छटा दर्शाता हुआ कल का बर्लिन आज वीरान् हो गया था। अब तो यहां वे इनेगिने व्यक्ति रह गए थे, जो स्थान-स्थान के फूटे खंडहरों को देख इनको पुनर्निर्माण करने का प्रण करते थे। बर्लिन के इसी सबेरे हमारा इन्डियन डेलीगेशन जर्मनी के पूर्वी शहरों का भ्रमण करने चल दिया। प्रबन्ध जर्मनी की सरकार की ओर से किया गया था। हमारी बस में भारतीय डेलीगेशन के अतिरिक्त कुछ सीलोन, बर्मा और मलाया के व्यक्ति भी थे। लगभग तीस व्यक्तियों को सम्हाले हमारी बस, फर्राटे से बीच के मार्गों को पार करती हुई अपनी निश्चित दिशा की ओर चली जा रही थी। मार्ग के पेड़-पौदे, मैदान, फूल-पत्तियाँ सभी कुछ भागते हुए से दृष्टिगत होते थे। बस में बैठते ही प्रत्येक व्यक्ति को चार-चार पौन्ड जेब खर्च के लिए दिया गया। बस के आगे-आगे एक मोटर हमारा मार्ग प्रदर्शन करती हुई एक घंटा पूर्व हमारे निश्चित स्थान पर



विश्व सम्मेलन के जलूस का एक दृश्य

पहुँच कर हमारे आगमन की सूचना दे देती थी। दो 'गाइड' और दो अनुवादकर्त्ता हमारे हुक्म की पाबन्दी के लिए हमारे साथ थे रंग-बिरंगे पुष्पों से सजी हुई बस में बैठे बड़े ही राजशाही ठाठ से यौवन-गीतों की धुनों को गुनगुनाते हुए चले जा रहे थे। सारे दिन का लम्बा सफर करके दो सौ मील की दूरी पर बसे हुए पैरेहिम शहर में पहुँचे। हजारों की भीड़ हमारे आगमन की प्रतीक्षा में फूलों के गुलदस्ते लिए सड़क के दोनों ओर खड़ी थी। बैंड और बिगुल की मधुर ध्वनि से समस्त दिशाएं गूंज रहीं थीं। बच्चे, बूढ़े, युवक, युवतियां सभी हमारी बस को देखते ही हर्ष और प्रसन्नता से नाच उठे। सबने चारों ओर से हमारी बस को घेर लिया। "फ्रैंन्डशिप" के गगन चुम्बी नारों से विश्व का कोना-कोना गूंज उठा। हमारी बसों के अन्दर आ सबने पुष्पों के गुलदस्ते भेंट किए और दो-दो लड़कियाँ एक-एक डेलीगेट के दाएं बाएं दोनों ओर से हाथों में हाथ डाल बस से उतार कर एक विशाल हाल में ले जाने लगीं। बैंड की ध्वनि तीव्र से तीव्रतर हो रही थी। बड़ा ही सुन्दर दृश्य था इस समय का। जीवन में ऐसे सम्मान कभी नहीं प्राप्त किये थे। परदेसियों की ऐसी आत्मीयता कभी नहीं देखी थी। तत्पश्चात भोजनोपरान्त हमें अनेकानेक उपाहार भेंट किए गए और भाषण में हमारी यात्रा के लिए शुभ-कामनाएं व्यक्त की गयीं। अनेक प्रकार के मित्रता और विश्व-शान्ति-सम्बन्धी नारों से सारा हाल गूंज उठा। रात्रि के समय यहां के युवकों द्वारा एक अत्यन्त ही सुन्दर सांस्कृतिक प्रोग्राम उपस्थित किया गया, जिसका संगीत और नृत्य सबको बहुत पसन्द आया।

जहाज़ी फैक्टरी

एक रात पैरेहिम में व्यतीत करके हमारी बस डेढ़ सौ मील यात्रा पार करती हुई विशमार नामक स्थान पर पहुँची। बस से उतरते ही यहाँ फैक्टरियों के युवक और युवतियों ने हमारा हृदय से स्वागत किया। यहाँ की जहाजी फैक्टरी अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यहाँ पहले

हिटलर की फौज रहती थी। सारे शहर में भय और आतंक का साम्राज्य था। चारों ओर युद्ध की भीषणता ही दृष्टिगोचर होती थी। अब इसी फैक्टरी में जहाज के अनेक पुर्जे बनते हैं। रूस से आए हुए जहाजों की मरम्मत होती है। अपने जहाज बनाने का प्रयास किया जा रहा है। अब तक केवल एक ही जहाज बना है। इस फैक्टरी के दो भाग हैं। एक में युवकों को काम करने की ट्रेनिंग दी जाती है। दूसरे में काम होता है। ट्रेनिंग लेने वाले युवकों की संख्या आठ सौ है, जिन्हें अस्सी मार्क (अस्सी रु०) प्रति मास वेतन दिया जाता है। काम करने वाले भाग में सात हजार युवक और युवतियाँ आठ घण्टे प्रतिदिन काम करते हैं। दोपहर का खाना इन्हें फैक्टरी की ओर से ही दिया जाता है। इस फैक्टरी में प्रति दिन तीन शिफ्ट होती हैं। रात के दस बजे से लेकर सुबह छः बजे तक काम करने वाले व्यक्तियों को दस प्रतिशत अधिक वेतन दिया जाता है। इस फैक्टरी के समीप ही एक अस्पताल है जिसमें फैक्टरी में काम करने वाले व्यक्तियों को पूरी सुविधा दी जाती है। उनके स्वास्थ्य का पूरा उत्तरदायित्व इस अस्पताल के डाक्टरों पर ही है। डाक्टर स्वयं ही समय-समय पर युवकों और युवतियों को फैक्टरी में देखने आते हैं कि कहीं इनके स्वास्थ्य पर कार्य का बुरा प्रभाव तो नहीं पड़ रहा है। स्त्रियों का विशेष रूप से ध्यान रखा जाता है। माता होनेवाली स्त्रियों को, दो मास बच्चा होने से पूर्व और दो मास उसके पश्चात, वेतन सहित छुट्टी दी जाती है। इनकी ऐसी खुशहाल और निश्चिन्त जिन्दगी देख कर भारत की उन किसान स्त्रियों की बरबस ही याद आ जाती है, जिनके खेत में काम करते हुए बच्चे उत्पन्न हो जाते हैं। उस समय उस रोते हुए नवीन शिशु को उठाकर कोई घर पहुँचानेवाला भी हमदर्द नहीं मिलता।

रोशटाक का सांस्कृतिक केंद्र

विशमार में एक रात्रि व्यतीत करके हम सौ मील की दूरी पर स्थित रोशटाक नामक शहर में पहुँचे। यह पूर्वी जर्मनी का एक प्रसिद्ध शहर है,

छुट्टियों का पूरा लाभ उठाने का अवसर मिलता है। दोपहर के समय सबको अखबार पढ़ाया जाता है तथा अन्य बाह्य ज्ञान की शिक्षा दी जाती है। बच्चे ड्रामे खेलते हैं, खेती करते हैं, क्यारियाँ बनाते हैं और नाना प्रकार के गाने सीखते हैं। प्रत्येक बच्चे ने चूने से अपने तम्बू के आगे सुन्दर-सुन्दर नमूने बनाए हैं जो उनकी रुचि का प्रदर्शन करते हैं। सबके मुख पर प्रसन्नता, प्रफुल्लता और स्वास्थ्य की रेखायें झलक रही हैं। विश्व-युवक सम्मेलन इन्होंने अपने ही ढंग से मनाया। आतिशबाजी के स्थान पर जंगल के घास-फूस एकत्र करके, उसे जलाकर ही सारे कैम्प को रोशन कर दिया। पश्चिमी जर्मनी के सम्मेलन से आने वाले युवकों के बारे में एक ड्रामा बहुत ही सुन्दर था। किस प्रकार वेष बदल कर वहां के युवक बर्लिन सम्मेलन में पहुँचे, इसका बहुत ही सुन्दर नाटक वहां के बच्चों ने खेला। उस रात्रि को हम लोग उसी कैम्प के तम्बुओं में सोए। भारत के गांव की स्मृति सजग हो उठी थी। पास ही लहलहाता हुआ समुद्र, चारों ओर हरे भरे मैदान, फूलों के बगीचे और पास-पास बने हुए अनेकों तम्बू-सब वस्तुएं मिलकर अत्यन्त ही मनोरम दृश्य उपस्थित कर रही थीं। यहां बच्चों को स्वावलम्बी बनने का पहला पाठ पढ़ाया जाता है। छोटे-छोटे, सात-सात बरस के बच्चे अपना उत्तरदायित्व अनुभव करते हैं। खाने के समय सब बच्चे अपनी-अपनी प्लेटें लेकर रसोई में पहुंच जाते हैं और अपना खाना बाहर मैदान में लाकर खाते हैं। दोपहर के तीन बजे से लेकर पांच बजे तक समुद्र में तैरना सीखते हैं। सन्ध्या होते ही अपने-अपने वस्त्र आदि स्वयं ही बिना किसी के आदेश के पहन लेते हैं। उनके सब कार्य ऐसे संयम तथा नियम से होते हैं कि इतने बच्चों को सम्हालने में किसी प्रकार की असुविधा या कठिनाई का अनुभव नहीं होता।

एक नयनाभिराम ग्राम

बर्लिन लौटते समय बीच के गांव का दृश्य अत्यन्त ही सुन्दर तथा मनोरम था। जिस गांव में पहले जमींदारों का आतंक छाया रहता था वहीं

अब फले-फूले किसान-परिवार जमीन के मालिक बनकर अनेकों प्रकार का अनाज उपजाते हैं। यहां रहने वाला किसान-परिवार अब भी अपने बीते दिनों की याद कर कांप उठता है। उसकी दर्द भरी कहानी बड़ी करुण थी। उसने हिटलर के राज्य के वे दिन देखे थे जब रणचण्डी का तांडव नर्त्तन हुआ था, जब चारों ओर हाहाकार करती हुई अमानवता ने बड़ा वीभत्स रूप धारण किया था। अब यह किसान अपने छोटे से कुटुम्ब के साथ अपनी जमीन का मालिक बनकर सदा हर्षवदन अपने कार्यों में व्यस्त रहता है। इस किसान के पास गाय, भैंस, घोड़े, मुर्गियां आदि सभी पर्याप्त मात्रा में हैं। पूरा परिवार खेत में काम करके शान्ति की जिन्दगी व्यतीत करता है। इस गांव में एक सौ चवालीस ट्रैक्टर हैं। राज्य यहां के व्यक्तियों का बहुत ख्याल रखता है। समय-समय पर समुचित सहायता पहुँचाई जाती है। साहित्य, कला और विज्ञान की शिक्षा देने का पूरा प्रबन्ध है। एक सप्ताह में दो बार सिनेमा दिखाया जाता है, जिसमें वैज्ञानिक आविष्कारों का चमत्कार और खेती की उन्नति के साधन प्रदर्शित किये जाते हैं। ये वैज्ञानिक आकर नई-नई मशीनों के द्वारा इनकी प्रगति को बढ़ाते हैं। यहाँ गांव वालों की आवश्यकताओं की पूर्ति यथानुसार की जाती है। शहर से अनेक आवश्यक वस्तुएं लाकर इसी दफ्तर में रखी जाती हैं ताकि किसी को आवश्यकता पड़ने पर मीलों दूर शहर जाने की असुविधा न उठानी पड़े। पास ही बच्चों का एक बहुत बड़ा स्कूल है जहाँ चार सौ बच्चे शिक्षा प्राप्त करते हैं। छः बरस से लेकर चौदह साल के बच्चे इस स्कूल में पढ़ते हैं और उनकी रुचि और योग्यतानुसार ही उन्हें काम में लगा दिया जाता है। इस स्कूल में पढ़ाई के अतिरिक्त अनेक प्रकार की सुन्दर कलाओं की शिक्षा भी दी जाती है। छोटे-छोटे बालक चित्रकारी करते हैं, कपड़ा सीते हैं, बेल-बूटे बनाते हैं और हाथ से तारकशी करते हैं। फोटोग्राफी का ऐसा ज्ञान है कि आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। फोटो को डेवलप करने, एनलार्ज करने और उसमें उचित संशोधन करने की कला से भी अनभिज्ञ नहीं हैं। सबमें जाग्रति है, जोश

है, उत्साह है और जीवन को उन्नत बनाने की लगन है। सबके चेहरे हँसी, खुशी और स्वास्थ्य की लालिमा से जगमगा रहे हैं। गांव की इन खुशहाल, फली-फूली जिन्दगियों को देख कर अपने भारत के उन अस्थिपिंजरों की याद आए बिना नहीं रहती जो जीवन को विधाता का सबसे बड़ा अन्याय समझ कर इसे गिरते-पड़ते और ढोते हुए चले जाते हैं। यहां के किसानों का सुन्दर और उन्नतिशील जीवन देखकर उन हड्डियों के सूखे हुए जर्जर शरीरों की मूर्तियाँ अनायास ही आँखों के सम्मुख नाच उठती हैं, जो जमींदारों के आतंक से भयभीत, महाजनों के कर्ज से दबे हुए, पटवारी की घुड़कियों से सशंकित और बिरादरी के आडम्बरों में फंसे हुए अपने जीवन की घड़ियों को गिन-गिन कर काटते हैं।

इस प्रकार जर्मनी के प्रायः सभी पूर्वी शहरों में लोकराज का सुन्दरतम् रूप देखने को मिलता है। सभी उन्नति के शिखर पर पहुंच रहे हैं। जिन फैक्टरियों में पहले युद्ध के शस्त्र बनते थे उनमें अब हवाई जहाजों के पुर्जे बनाए जाते हैं। जिस धन का अधिकांश भाग फौज के ऊपर खर्च होता था वहां अब देश की शिक्षा, कला और विज्ञान की उन्नति के ऊपर खर्च होता है। जहाँ बीहड़ घने जंगल फैले हुए थे वहीं अब हरे-भरे धन-धान्य से पूर्ण खेत लहलहा रहे हैं। जिन गांवों में जमींदारों का आतंक छाया रहता था, वहां अब फले-फूले परिवार अनेकों प्रकार का अन्न उपजाते हैं। यहां स्थान-स्थान पर पंचवर्षीय योजना के चिह्न लगे हुए हैं जिसे पूरी करने के लिए बच्चे-बच्चे में दृढ़ता, विश्वास, साहस और लगन की रेखायें दृष्टिगोचर होती हैं।

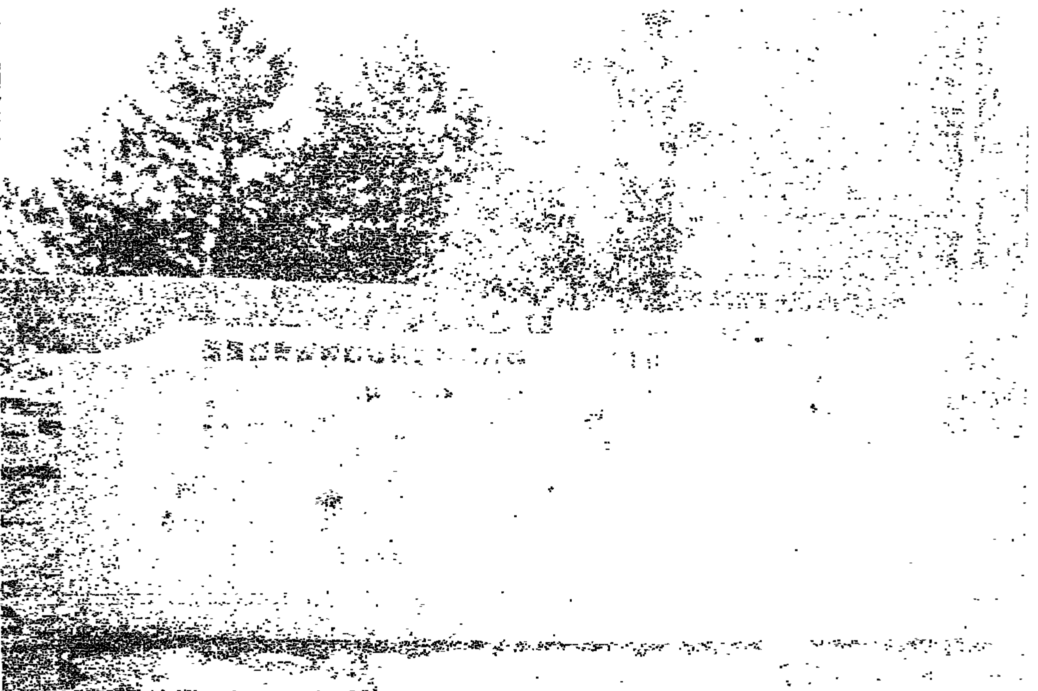
हंगरी

(बालातोल झील का किनारा)

५ सितम्बर १९५१

बर्लिन का विराट् उत्सव समाप्त हो गया पर सबके दिलों पर सदा के लिए अपनी एक मधुर स्मृति छोड़ गया है। वहाँ से लौट कर आए हुये किसी भी प्रतिनिधि से इसके बारे में पूछो, भावावेश में आ घटनाओं को बताते समय उसकी आँखों में आंसू छलछला आते हैं। कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं जिसे जर्मन व्यक्तियों के स्नेह ने प्रभावित न किया हो। उनसे गले मिलते समय किसने उनके हृदय को प्रेम और आत्मीयता से भरा नहीं पाया। शान्ति के लिए किसने उनके हृदय का स्पन्दन नहीं सुना? किसने उनकी आँखों में युद्ध के लिए घृणा की भावनायें नहीं देखीं? किसका हृदय जिनसे बिदा लेते समय फूट-फूट कर नहीं रोया। पूंजीवादी समाचार पत्रों का यह झूठा प्रचार कि सम्मेलन बिल्कुल असफल रहा, वहाँ किसी को पेट भर खाना नहीं, मिला, प्रदर्शनियों में मक्खियाँ भिनभिनाती रहीं आदि बातें हास्यास्पद नहीं तो क्या है? सम्मेलन के हंगरी, पोलैण्ड, बलगेरिया, सोवियत, चीन आदि जनवादी देशों, ने कितने ही देशों के प्रतिनिधियों को अपने यहाँ आमंत्रित किया जिससे वे लोहे की दीवार के पीछे उनका सच्चा नव-निर्माण और समृद्धिशाली जीवन देख सकें।

हंगरी के इस जनवादी वायुमंडल में हमारा प्रथम प्रवेश तथा वहाँ की खुशहाल जिन्दगियों से हमारा प्रथम सम्पर्क था। अब तक इनके बारे में अनेक विचारों की पढ़ी और सुनी हुई बातों ने मन और मस्तिष्क को उलझा दिया था। कोई कहता, ये देश गरीब और भिखमंगों से भरे हुए हैं, यहाँ बोलने, व अपने विचारों को प्रकट करने की आजादी नहीं। कोई कहता, यहाँ की सरकार अपना सारा धन युद्ध-सामग्री बनाने में ही खर्च करती है, ये लोग शान्ति नहीं चाहते। किसी के मुख से सुनाई पड़ता, यहाँ पुराने दास-दासियों की भाँति स्त्री-पुरुषों को उनकी इच्छा के विरुद्ध काम



पश्चिमी हंगरी के खदानों के नगर टाटाबन्यो में बच्चों का एक क्रैशे (बालगृह)

करने के लिए बाध्य किया जाता है, आदि-आदि ऐसी ही अन्य अनेक चर्चाओं ने इस समाजवादी व्यवस्था को देखने और समझने के लिए हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न कर दी थी। आज अपनी इस जिज्ञासा की पूर्ति देख हम हर्षोन्मत्त हो उठे हैं। इन देशों के विरुद्ध किए गए झूठे और निराधार प्रचारों पर आश्चर्य होता है। अपनी आँखों से हम यहाँ का सुखी और सम्पन्न जीवन देख रहे हैं। मजदूरों और किसानों के लिए स्थान-स्थान पर बने हुए सांस्कृतिक भवन, विश्राम गृह, नर्सरी, अस्पताल, शिशुपालन गृह आदि को देख कर कौन कह सकता है कि यहाँ मजदूरों और किसानों का शोषण होता है। सुखी पारिवारिक जीवन व्यतीत करती हुई अनेक कलाओं में निपुण यहाँ की स्त्रियों के स्वस्थ चेहरों और प्रसन्नचित मुद्राओं को देख किसे विश्वास होगा कि इन्हें दासियों की भाँति अठारह घण्टे काम करने के लिए बाध्य किया जाता है। शान्ति की जोरदार पुकार करने वाले इन असंख्य शान्ति-सैनिकों—जो प्रतिदिन कम से कम दो घण्टे शान्ति आन्दोलन को आगे बढ़ाने वाली संस्थाओं में अवश्य काम करते हैं—देखकर और इनसे बातें करके किसे विश्वास होगा कि ये लोग युद्ध चाहते हैं, और युद्ध की सामग्री बनाने में अपना अधिकांश धन व्यय करते हैं। हम जिस समय जहाँ जाना चाहते हैं, दुभाषिये को लेकर जा सकते हैं। कहीं कोई रोक-टोक नहीं। अकेले जाने की मनाही नहीं, पर भाषा न जानने के कारण किसी अंग्रेजी जानने वाले दुभाषिए को साथ में रखना ही पड़ता है। राह चलते, बसों में सफर करते हुए, ग्रामीण बस्तियों में, सड़कों और बाजारों में सभी जगह हम आँखें फाड़ फाड़ कर देखते हैं पर आज तक एक भी भिखमंगा नजर नहीं आया। झाड़ू देता हुआ मेहतर भी मोजे-जूते पहने, नक्टाई लगाए और सर्दी के कारण ऊनी गुलूबन्द से कानों को ढक कर बाहर निकलता है। यहां के विरोधियों के इस कथन पर कि आगन्तुकों को पूर्व निश्चित स्थान ही दिखाये जाते हैं, वास्तविकता का पता नहीं चलता जरा देर के लिये विश्वास कर भी लें, (यद्यपि ऐसा आभास कहीं नहीं हुआ) तो भी यह कैसे मान लें कि इस मेहतर को भी हमारे आने की सूचना दे दी गई थी। क्या हमारे आते

ही सब भिखमंगों को काल कोठरी में बन्द कर दिया गया और सब बैरों और रसोइयों को नई-नई पोशाकें बांट दी गईं। आँख कान खुले हों तो किसी नगर या गांव के जन जीवन को समझने में कठिनाई नहीं होती। अबोध बच्चों की भाँति वे हमारी आँखों पर पट्टी बाँध कर हमें किसी रहस्य लोक में नहीं ले जाते। कम समय में अधिक स्थानों को देखने के लिए ऐसी व्यवस्था सभी देशों में की जाती है। इन देशों के विरुद्ध उगला हुआ जहर किसी भी स्वतन्त्र विचारों वाले व्यक्ति पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकता।

आज समाजवादी सभ्यता की नई-नई रचनाओं को हम आँखें खोल कर देख रहे हैं। मन और मस्तिष्क दोनों ही विचारों की दुनियाँ में पहुँच कर सोचने लगे, कितना परिवर्तन हो गया इस अल्प समय में ही इन देशों में। जहाँ पहले पूँजीपतियों का साम्राज्य था, देश के मुट्ठी भर व्यक्ति धन का उपभोग करते थे, वहां आज वर्ग-समस्या और श्रेणी-संघर्ष का अन्त करके सबके लिए समान रूप से जीवन की सब सुविधायें उपलब्ध कर दी गई हैं। गरीब किसान और श्रमिकों के बच्चे भी आज स्कूलों और कालेजों में जाकर शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, और बड़े-बड़े इंजीनियर, डाक्टर, प्रोफेसर या कलाकार बन रहे हैं। इनके प्रफुल्लित चेहरे देखकर अपने यहाँ के गरीब बच्चों की याद आ गई—सींक जैसी पतली-पतली टांगें, बढ़ा हुआ पेट, रूखे चेहरे और नीरस आँखों वाले उन गरीब किसानों और मज़दूरों के बच्चों के लिए ऐसे राजकीय सुखों की कल्पना करना यहाँ के निवासियों के लिए स्वप्न द्रष्टा बन जाना नहीं तो क्या है? किसी देश की शासन व्यवस्था और वहाँ के शासक उस देश की कितनी काया पलट कर सकते हैं, हंगरी में आज इसका प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। वही देश है, वही भूमि और वही यहाँ के निवासी, किसी में भी अन्तर नहीं। अन्तर है तो केवल शासन और अर्थ व्यवस्था में। फासिस्टों से छुटकारा पाते ही हंगरी की जनता ने अपने सर्व प्रिय नेता राकोशी की अध्यक्षता में अपनी मातृभूमि का नव-नव शृङ्गार करना प्रारम्भ कर दिया।

हम कुछ आस्ट्रेलियन और कुछ स्पेनिश प्रतिनिधियों के साथ हंगरी की "बालातोल झील" के किनारे एक अत्यन्त ही सुन्दर होटल में ठहरे हैं। बुडापेस्ट से एक सौ पचास मील की दूरी पर स्थित सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों से घिरा हुआ यह स्थान हंगरी में बेजोड़ माना जाता है। यहाँ प्रायः बुडापेस्ट के लोग अपनी छुट्टियाँ व्यतीत करने आते हैं क्योंकि मनोविनोद के दृष्टिकोण से यह हंगरी का सबसे सुन्दर स्थान है। सामने की नौ मील चौड़ी और पचास मील लम्बी बालाताल झील एक विशाल समुद्र का सा दृश्य उपस्थित करती है। समुद्र के अभाव में यहाँ के व्यक्ति इस झील के किनारे को ही "सी शोर" (समुद्रकिनारा) के नाम से पुकारते हैं।

स्वास्थ्य की दृष्टि से भी यह स्थान बहुत उपयोगी है। यहाँ हमें तो भूख इतनी लगती है कि दिन में चार बार डटकर खाने के बावजूद भी हम फलों के पेड़ों पर चढ़ कर सेब, नाशपाती, अखरोट, आलू और प्लम्स आदि बिना किसी हिसाब किताब के खा जाते हैं। हमारा रहने का स्थान अनेक प्रकार के फलों के वृक्षों से घिरा हुआ है। जब जो चाहा पेड़ों से तोड़ कर खाने लगे। अंगूरों से लदी हुई बेलें तीन खन ऊँचे चढ़कर हमारे कमरे की खिड़की तक पहुँच गई हैं मानों हम परदेसियों से नाता जोड़ना चाहती हों।

यहाँ से लगभग पचास मील की दूरी पर एक छोटी-सी पहाड़ी पर स्थित हम रोमन कैथोलिक चर्च देखने गए। यह चर्च ग्यारहवीं शताब्दी में बनाया गया था। यहाँ हमने पुरानी मूर्तिकला, चित्रकला, प्राचीन हंगेरियन लिपि और पुरानी पोशाकों के नमूने देखे। इसे बनवाने में पचास वर्ष लगे थे। इसके नीचे ही चर्च बनवाने वाले बादशाह की कब्र खुदी है। सौ साल पुरानी कलायें इस चर्च में प्राचीन कलाओं का प्रतिनिधित्व कर रही हैं।

यहाँ हमने वह स्थान भी देखा जहाँ १६२६ में विश्व कवि स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ टैगोर अपनी बीमारी की अवस्था में आकर रहे थे। आठ नवम्बर १६२६ में उनके हाथ का लगाया हुआ वृक्ष अब तक ज्यों का त्यों सुरक्षित

रक्खा गया है। वृक्षारोपण करते समय कवि द्वारा कहे गये शब्दों को हंगरी के अखबारों ने इस प्रकार प्रकाशित किया था।

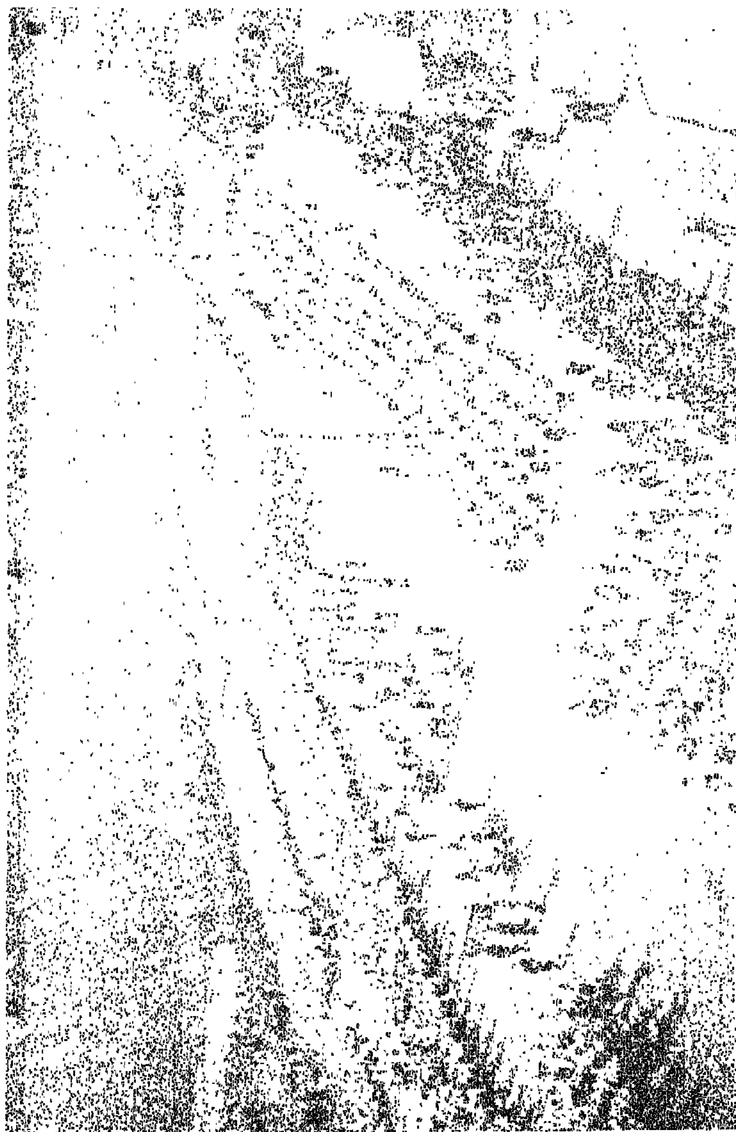
"यह वृक्ष मैं यहाँ अपने आवास की यादगार में लगा रहा हूँ क्योंकि कहीं भी वह मुझे नहीं दिया गया जो यहाँ मुझे मिला वह अतिशय से अधिक था, वह भाईचारे की, कुटुम्ब की भावनाओं की अनुभूतियों का जागरण था ईश्वर करे कि सहस्रों जन बलोंर्ड के अपने आवास में उतना ही आनन्द पायें जैसा कि मैंने पाया।"

इस स्वास्थ्य केन्द्र की आतिथ्य पुस्तिका ने इन सारी पंक्तियों को सुरक्षित रखा है। सन् १६२६ के शिशिर में कवि ने कुछ सप्ताह यहीं बिताये थे और बुडापेस्ट में एक अत्यन्त सफल उच्चकोटि का व्याख्यान किया था। टैगोर के आगमन को हंगरी में एक महत्वपूर्ण घटना माना गया था। अखबारों में कवि की कृतियों, व्यक्तित्व और व्याख्यान के विषय में लम्बे-लम्बे लेख छपे थे। उद्यान के प्राचीन तरुओं की सुखद छाया में बैठकर वे झील और तालाब की शोभा प्रफुल्लित हो निहारा करते और कविता लिखने के लिए प्रेरित होते। हंगरी की भारत से समानता करते हुए उन्होंने कहा था "मैं एक ऐसे राष्ट्र की भूमि पर आ गया हूँ जिसकी भावनायें भारत के समान हैं, हंगेरियन लोकगीत, कशीदाकारी आदि वस्तुयें भारत से साम्य रखती हैं।" हमने अनुभव किया कि इस विश्व कवि के प्रति आज भी इन हंगेरियन व्यक्तियों में असीम श्रद्धा और सम्मान की भावनायें झलकती हैं। इनकी लिखी हुई पुस्तकों को ये लोग बड़ी रुचि से पढ़ते हैं।

लोकवाद का सुन्दरतम् रूप हमने यहाँ के स्टेट फार्म और कोआपरेटिव फार्म में देखा। समाजवाद सम्पत्ति का स्वामित्व समाज के हाथ में देता है, वह सम्पत्ति चाहे औद्योगिक हो या कृषि सम्बन्धी। अतः स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् औद्योगिक क्षेत्रों में जब सुचारु रूप से कार्य प्रारम्भ हो गया तो यहाँ के सर्व प्रिय नेता राकोशी की दृष्टि हंगरी की कृषि सम्बन्धी समस्याओं पर पड़ी। सबसे पहला और सबसे महत्वपूर्ण कदम जो उन्होंने उठाया वह जमींदारी प्रथा का अन्त था। जमींदारों को उचित मुआवजा



हंगरी में बच्चों का एक आराम-घर



हंगरी में जलूस का एक दृश्य

देकर यहाँ की नई सरकार ने बहुत से खेतों को किसानों को दे दिया और कुछ खेतों को सरकार ने अपने हाथ में ले लिया। स्टेट के खेतों में काम करने वाले किसान कारखाने के मजदूरों की ही भाँति प्रतिदिन आठ घंटे काम करते हैं और ६०० फॉरेंट (लगभग ३०० रुपया) प्रतिमास वेतन पाते हैं। इन खेतों का सारा उत्तरदायित्व यानी बीज ट्रैक्टर और अन्य मशीनें आदि मँगाने का काम स्टेट सँभालती है। किसानों को किसी प्रकार की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। जिस स्टेट फार्म में हम गए वहाँ चार सौ पचास किसान काम कर रहे थे। इन सब जिम्मेदारियों को सँभालने के लिए एक इंजीनियर नियुक्त किया गया है। जिसकी तनख्वाह लगभग एक हजार फोरेन्ट प्रतिमास है। इन खेतों की उपज का लगभग सत्तर प्रतिशत स्टेट के पास चला जाता है। बीस प्रतिशत बीज आदि के लिए रख लिया जाता है। यहाँ काम करते हुए किसान हृष्टपुष्ट और खुशहाल नजर आए किसी के शरीर में सिरतोड़ परिश्रम करने के चिन्ह नहीं दिखाई दिए। दिन में आठ घंटे से अधिक परिश्रम करना कानूनन मना है। सप्ताह में एक बार इनकी डाक्टरी परीक्षा की जाती है। चिकित्सा की आवश्यकता होने पर अस्पताल भेज दिया जाता है। इन खेतों की नींव स्वतंत्रता के बाद सन् १९४७ में पड़ी। श्रमिकों के इस स्वर्ग को देख कर हम बहुत प्रभावित हुए।

इस स्टेट फार्म के अतिरिक्त कुछ साम्यवादी, आदर्शवादियों ने कोआपरेटिव फार्म (पँचायती खेती) की स्थापना की है। इसका उद्देश्य किसानों को सम्मिलित खेती करने के लिए प्रेरित करना है। अलग-अलग जमीनों में व्यक्तिगत खेती करने से लाभ की मात्रा बहुत कम हो जाती है, क्योंकि न तो कोई सरकारी सहायता ही मिलती है और न छोटी छोटी जमीनों पर ट्रेक्टर्स तथा अन्य वैज्ञानिक मशीनों का प्रयोग किया जा सकता है। अनेक किसानों की जमीनों को एक करके सम्मिलित किया हुआ कार्य उपज बढ़ाने में सहायक होता है। अतः इसी लाभ के दृष्टिकोण से यहाँ कोआपरेटिव फार्म की उत्पत्ति हुई।



बुडापेस्ट इकनामिक यूनिवर्सिटी का विशाल हॉल

इस के आपरेटिव फार्म का जब तक पूरा-पूरा लाभ किसान के सामने प्रत्यक्ष नहीं हो गया तब तक उसने इसमें सम्मिलित होना स्वीकार नहीं किया। किसान प्रारम्भ से ही पिछड़ा हुआ, मूर्ख, अनभिज्ञ तथा अज्ञानी होता है। किसी भी नये काम में हाथ डालते हुए उसे भय लगता है कि कहीं उसका व्यक्तिगत लाभ खतम न हो जाय। वह अपने दस अंगुल के खेत के लिए भगवान के भरोसे ही बैठा रहना चाहता है। भगवान की दया हो गई, पानी बरस गया, तब तो हरा ही हरा है अन्यथा कभी सूखा पड़ गया, कभी टिड्डियाँ खेत चर गईं और कभी बाढ़ आ जाने से सारे राष्ट्र पर असर पड़ गया। अतः वैयक्तिक किसानों की आमदनी का कोई निश्चय नहीं। किसानों की इसी कमजोरी को दूर करने के लिए हंगरी की सरकार ने महत्त्वपूर्ण कदम उठाए क्योंकि उन्होंने अनुभव किया कि किसान और खेती में सुधार हुए बिना कृषि प्रधान देश की उन्नति किसी प्रकार भी सम्भव नहीं। किसान के अशिक्षित और पिछड़े रहने से नागरिक और ग्रामीण का भेद सदा बना रहेगा और वैज्ञानिक अनुसंधानों से अनभिज्ञ किसान अपना एक अलग संसार बनाए रहेगा। इसी आर्थिक और सांस्कृतिक उन्नति के दृष्टिकोण को सामने रखकर सामूहिक खेती की ओर किसानों को आकर्षित किया जाने लगा। पहले वर्ष तो बहुत कम किसानों ने यह साहस दिखाया। पर जब अन्य किसानों ने इसके बढ़ते हुए लाभ को प्रत्यक्ष देखा और अनुभव किया कि यहां वैज्ञानिक खाद तथा बड़ी-बड़ी मशीनों को प्रयोग करने का अवसर मिलता है, संगठित श्रम करने का उत्साह उत्पन्न होता है और सरकार से हर प्रकार की सहायता मिलती है तो अनेकों किसान इसमें सम्मिलित होने लगे। सामूहिक खेती के किसानों के सुन्दर जीवन और खुशहाल जिन्दगी को देखकर भी अन्य किसानों को प्रेरणा मिली और उन्होंने सामूहिक रूप से काम करने का साहस दिखाया। इस प्रकार हंगरी में सन् १९४७ में सामूहिक खेती करने की प्रथा का प्रारम्भ हुआ, पर किसी किसान को इस के लिए बाध्य नहीं किया गया वरन् उनकी इच्छा पर ही छोड़ दिया गया।

अब तक व्यक्तिगत खेती करने का यही कारण है कि बड़ी-बड़ी जमीनों वाले किसान इसमें सम्मिलित होना नहीं चाहते। हंगरी भर में कुल अड़तालिस कोआपरेटिव फार्म हैं। धीरे-धीरे इनकी प्रगति हो रही है, क्योंकि इसके नफे नुकसान को हर किसान स्व ं ही अनुभव करने लगा है। इन खेतों के समस्त उत्तरदायित्व को यहां की किसान संघ एग्रीकल्चरल यूनियन संभालती है जिसकी स्थापना किसानों द्वारा ही की जाती है। इस यूनियन के बारह मेम्बर होते हैं जिनको स्वयं किसान चुन कर भेजते हैं। सब किसानों के जानवर—गाय, भैंस, बैल आदि का भी सम्मिलित रूप से भरण पोषण होता है और बाद में आमदनी का बंटवारा कर लिया जाता है। बीस-बीस, तीस-तीस, सेर दूध देने वाली, मोटी ताजी भारी भरकम गायें हम यहाँ देख रहे हैं।

इन किसानों की निरक्षरता और अज्ञानता को दूर करने का भी पूरा प्रयत्न किया गया है। एक स्पेशल कमीशन की स्थापना की गई है जिस पर बच्चों की प्रारम्भिक शिक्षा का भार छोड़ दिया गया है। अब तीस लाख बच्चे स्कूल जाने लगे हैं। हम ने यहाँ किसानों के सेकेण्डरी स्कूल भी देखे। प्रारम्भिक शिक्षा के पश्चात् यहाँ के युवक युवतियों को सेकेण्डरी स्कूलों में खेती बाड़ी की वैज्ञानिक रूप से शिक्षा दी जाती है। कृषि सम्बन्धी वैज्ञानिक रूप से प्राप्त की गई शिक्षा उनकी उन्नति में बहुत सहायक होती है। इस प्रकार हंगरी के इन खेतों में आकर हम ने अनुभव किया कि आज जनवादी हंगरी ने जीवन के सभी क्षेत्रों मे चाहे फैक्टरी हो या खेल, स्कूल हों या यूनिवर्सिटी, कारखाने हों या कोयले की खानें, आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गए हैं।

हंगरी की इस बालातोल झील के किनारे छोटी सुन्दर पहाड़ी पर स्थित म्यूजियम को हम आस्ट्रेलियन और स्पैनिश प्रतिनिधियों के साथ देखने गए। दो गाइड और तीन दुभाषिये हमारे साथ थे। इस पहाड़ी पर पहुँचने का छोटा सा संकीर्ण रास्ता दोनों ओर अँगूर की बेलों से लदा हुआ बहुत ही सुन्दर प्रतीत होता था। इन खट्टे मीठे

अंगूरों के गुच्छे तोड़ कर खाते हुए एक लम्बी चढ़ाई को पार करके हम म्यूज़ियम में पहुंचे। इस म्यूज़ियम में उन्नीसवीं सदी के प्रसिद्ध कवि किसफालेडी स्कैंडेन्डर की कविताओं का अनेक भाषाओं में अनुवाद देखा। ये अनुवाद की हुई पुस्तकों के नमूने शीशे की अलमारियों में सजे हुए हैं। सामने ही कवि और उसकी पत्नी का चित्र टंगा है। इस पहाड़ी पर से नीचे के दृश्य बहुत ही सुन्दर लग रहे थे।

इस प्रकार हंगरी की इस बालातोन झील के किनारे कुछ आस्ट्रेलियन और स्पेनिश प्रतिनिधियों के साथ योरोप यात्रा के वे शिक्षा पूर्ण और रोचक दिन, जो जीवन में कभी नहीं भुलाए जा सकते, हमने बिताये।

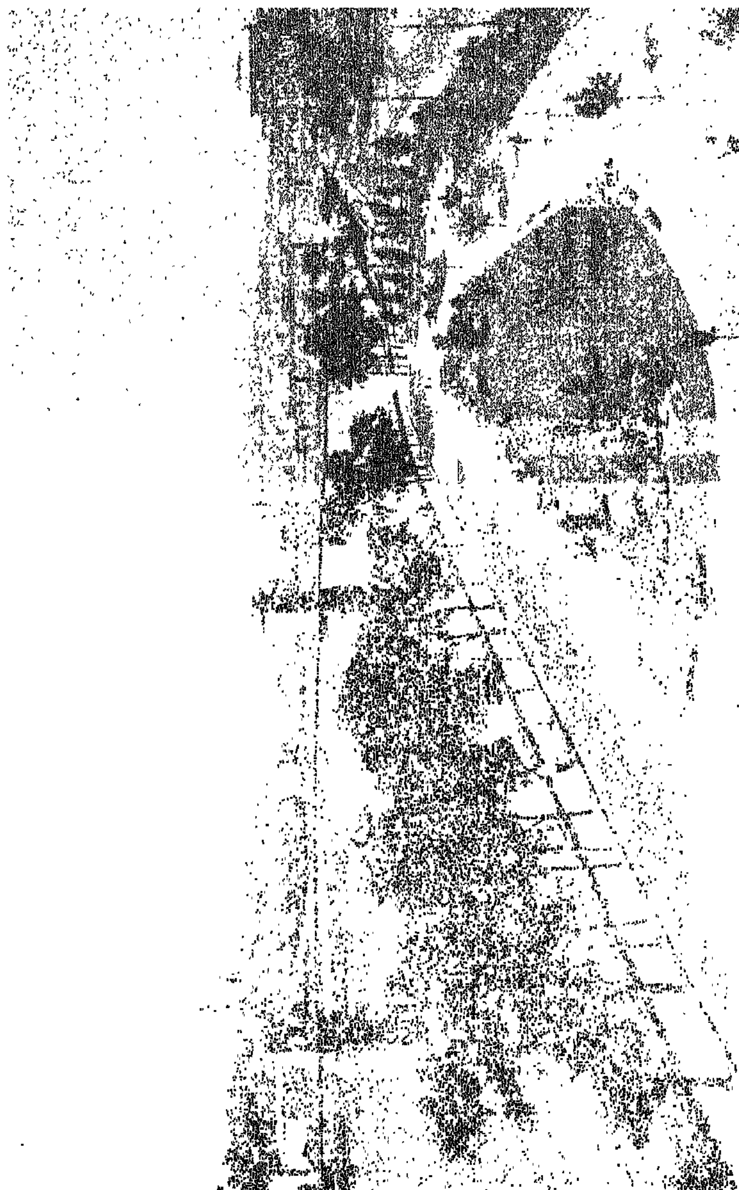


बुडापेस्ट (हंगरी)

२८ दिसम्बर सन् १९५१

आज सबेरे बालातोल झील से लौट कर बुडापेस्ट के एक विशाल होटल में आकर ठहरे हैं। बारह मंजिल का तेज रोशनियों से जगमग करता हुआ यह होटल रात के समय किसी राजा के प्रासाद से कम आकर्षक पूर्ण नहीं प्रतीत होता। लाल मखमल से विभूषित सीढ़ियाँ मानव के आकार के से शीशे, रेशमी मूल्यवान पर्दे, हर कमरे में टेलीफोन, टेबुल लैम्पस, गर्म ठंडे पानी का चमचमाता हुआ बेसिन, उचित फर्नीचर तथा रेशमी रजाई से ढके हुये पलंग आदि वस्तुयें देखकर रानियों की अन्तःपुरी का भ्रम हो रहा है। एक सौ तीस व्यक्ति केवल खाना बनाने के लिए नियुक्त हैं। इन खाना बनाने वालों को रसोइये कौन कहेगा। सूट बूट पहने, घड़ी लगाए, एप्रेन बांधे और कानों को गर्म टोपी से ढके हैं। हमारे यहाँ के तो बड़े अफसर भी ऐसे ठाट से नहीं रहते। यहाँ के विरोधियों से कोई पूछे कि इनके ये ठाट इनका अदब और तहजीब से शिक्षित व्यक्तियों की भांति हमारे साथ बातें और व्यवहार करना आदि भी क्या हमारे दिखाने के लिए ही है?

सबेरे का समय है। शीतल समीर के झोंके हमारी खिड़की में लम्बे पर्दों को नचा रहे हैं। नाश्ता करके हम ऊपर आ बैठे क्योंकि हमें बाहर ले जाने वाली बस अभी नहीं आई। हमारे जाने और देखने आदि का कार्यक्रम दस बजे से प्रारम्भ होता है, अभी नौ बजे हैं। हम खिड़की के पास बैठे नीचे के दृश्य देख रहे हैं। बुडापेस्ट की रम्य वसुन्धरा की गोद में कलकल नाद करती हुई डेन्यूब नदी इस पर बने हुए अनेकों सुन्दर पुलों पर सर्राटे से भागती हुई मोटर और बसें सब की शोभा अद्वितीय जान पड़ रही है। होटल के दरवाजे पर बाहर सैकड़ों नर-नारियों की भीड़ हमें देखने के लिए आतुर खड़ी है और हमारे नीचे उतर कर बस तक जाने की



प्रतीक्षा कर रही है। होटल से बस तक कुछ कदम पैदल चलने में भी हमें बीस मिनट से कम नहीं लगते क्योंकि कितने ही स्त्री पुरुष और बच्चे घेर कर खड़े हो जाते हैं। कोई हमारी बिन्दी के बारे में पूछता है, कोई बालों की लम्बाई को विस्मय भरी दृष्टि से देखता है और कोई साड़ी पर दृष्टि गड़ा लेता है। वस्तुतः इन देशों में हम एशियाटिक व्यक्तियों को देखने का बहुत कम अवसर मिला है इसीलिए ये लोग काले और भूरे रंग वालों को देखने के लिए आतुर हो उठते हैं। हम बस में आ बैठे हैं पर हमें फिर जनसमूह ने बस को भी चारों ओर से घेर लिया है। स्त्रियाँ अपने बच्चों को गोदी उठा कर शीशों में से हमारे चेहरे को दिखा रही हैं। कितने व्यक्ति उचक-उचक कर देखने का प्रयास कर रहे हैं। अजीब दशा है।

बस से हम यहाँ की एक चाकलेट फैक्टरी के समीप जाकर उतरे। यहाँ काम करने वाले युवक और युवतियों ने फूलों के गुलदस्तों और विश्व-शांति के नारों से हमारा स्वागत किया और हमें अन्दर अपना फैक्टरी दिखाने ले आए। फैक्टरी क्या है बड़ी-बड़ी विशाल मशीनों की प्रदर्शनी-सी जान पड़ रही है। जिस प्रकार चाकलेट का घोल अनेक छोटी बड़ी मशीनों के मुँह में प्रवेश कर नए-नए आकार धारण करता हुआ रंग बिरंगी पन्नियों में लिपट कर कागज के डिब्बों में सज कर चला आता है यह बहुत ही रोचक और सुन्दर लगा। सारा काम इतनी तीव्र गति से चलता है कि हमारे देखते ही देखते चाकलेट के डिब्बों के ढेर लग गए। यहाँ पर काम करने वाली स्त्रियाँ लम्बे-लम्बे एप्रन और मोटे दस्ताने पहिने अपने कामों में संलग्न हैं। बीच-बीच में हमारी ओर देख कर मुस्करा भी देती हैं। हमारे कोटों की जेबें और रुमाल इनकी दी हुई चाकलेटों से भर गए हैं। पेट भर जाने पर भी ये हमें सानुरोध खिला रही हैं। मैंने शीशे के काम वाली साड़ी पहनी हुई है। अतः सबकी दृष्टि उसी पर लगी है। शारीरिक परिश्रम कम होने के कारण यहाँ अस्सी प्रतिशत स्त्रियाँ तथा बीस प्रतिशत पुरुष काम करते हैं। साठ वर्ष में पुरुष तथा पचपन वर्ष में स्त्रियाँ रिटायर हो

स्त्रियों की ग्रामीण कशीदाकारी

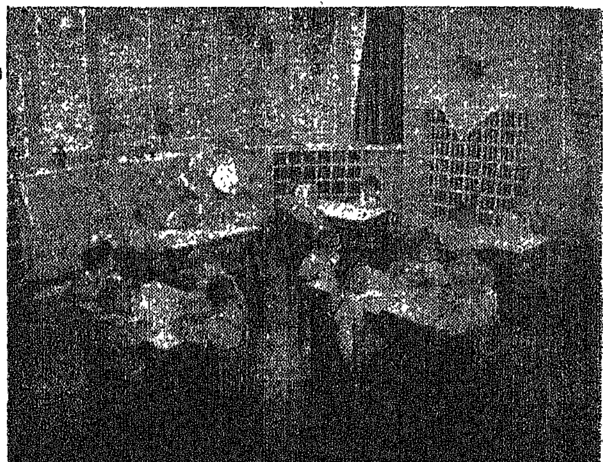
जाती हैं। उसे घर बैठे उचित पेन्शन दी जाती है। अच्छा काम करने वाले मजदूरों के चित्र फैक्टरी के बाहर लगे हैं इन्हें अनेक प्रकार के पुरस्कार तथा मेडल आदि दिए जाते हैं जिससे वे प्रोत्साहित एवं सम्मानित होकर पैदावार को बढ़ाने की प्रेरणा प्राप्त करते हैं। इनकी आय छः सौ फ्लोरेंट (लगभग २०० रुपया) प्रति मास है। खेल कूद बच्चों की शिक्षा, नर्सरी का खर्च, चिकित्सा और कलाओं का ज्ञान प्राप्त करने आदि के खर्चों से ये बिल्कुल विमुक्त रहते हैं। श्रमिक वर्ग का ऐसा सम्मानित जीवन देख कर कानपुर की मिलों में काम करने वाले गरीब मजदूरों का भूखा जन-समूह याद आ रहा है। दो जून रोटी के लिए जी तोड़ परिश्रम करने वाले इस दलित और शोषित वर्ग को मनुष्य कौन कहेगा जिनके बच्चों की, जूठन चाटने के लिए, गली के कुत्तों से भिड़न्त होती है।

जरा कुछ आगे बढ़े तो इन्हीं मजदूरों के सांस्कृतिक भवन में पहुँच गये। अनेक प्रकार की कलाओं का ज्ञान कराने वाला यह भवन इनकी सांस्कृतिक उन्नति का भार सम्हाले है। काम से छुट्टी पाकर सन्ध्या समय अनेक मजदूर यहाँ आकर अपने मस्तिष्क की भूख मिटाते हैं। चित्रकारी के प्रति रुचि रखते हुए कितने ही मजदूर युवक और युवतियों के बनाए हुए हमने तैल चित्र और स्त्रियों की कसीदाकारी के नमूने देखे। संगीत कला के प्रेमियों ने हमें बैंड पर गीत सुनाये। साहित्यानुरागी मजदूरों को हमने दस हजार पुस्तकों से सजे यहाँ के पुस्तकालय में बैठे देखा तुम्हीं बताओ प्रभा, कैसे विश्वास करें कि यहाँ मजदूरों का शोषण किया जाता है। इन मेहनतकशों के हृदय में सोए हुए कलाकार के रूप को आज हमने पहली बार देखा है। इसीलिए सब विस्मय भरी दृष्टि से आँखें फाड़ फाड़ कर देखते हुए सोच रहे हैं कि क्या सचमुच ये कारखाने में काम करने वाले मजदूर हैं?

यहाँ से निकलकर दाहिनी ओर के दरवाजे में प्रवेश किया तो चिल्ल पों करते हुये तीन मास से लेकर तीन वर्ष तक के बच्चों की महफिल सी

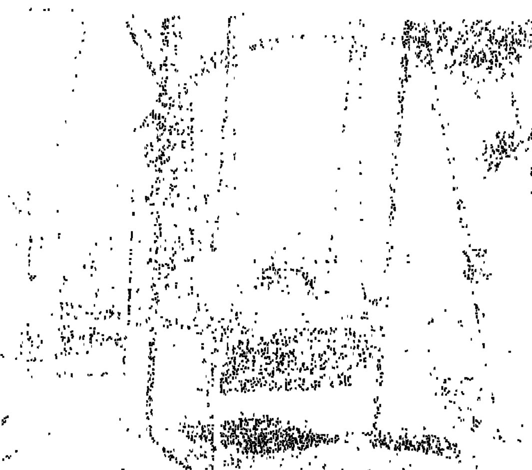


शिशु पालन गृह



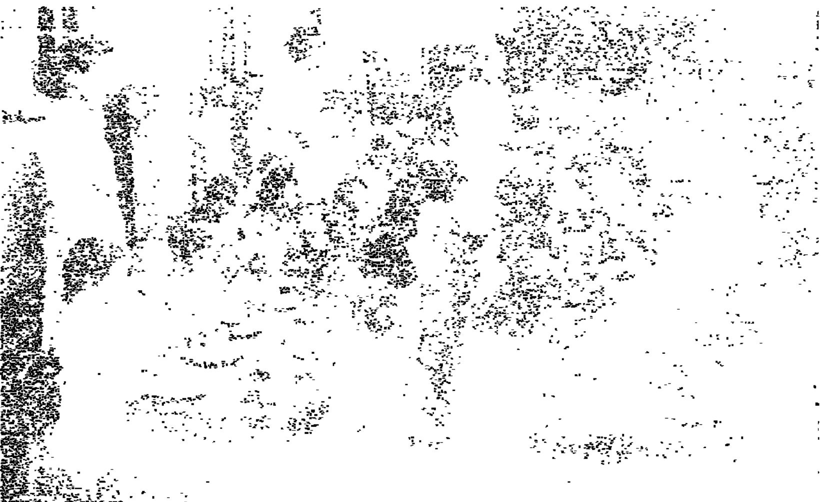


शिशुओं की देखरेख शिक्षित और अनुभवी नर्सों द्वारा



बच्चों के आमोद प्रमोद के स्थान



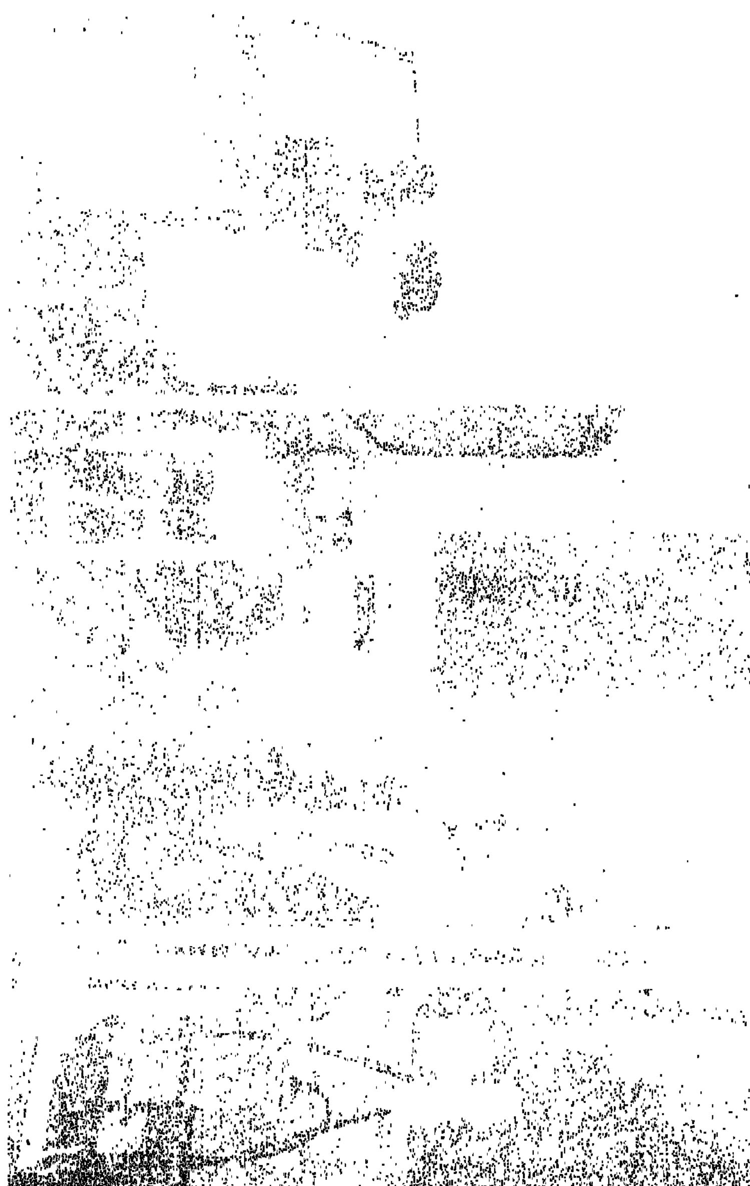


शिशु-गृह में बच्चों की रोजाना ही दावत होती है

जमी हुई नजर आई। मालूम हुआ यह इनकी नर्सरी (शिशुपालनघर) है। इसी चाकलेट फैक्टरी में काम पर जाने वाली स्त्रियां अपने बच्चों को यहाँ छोड़ गई हैं और सायंकाल लौटते समय ले जायेंगी। कोई सो रहा है, कोई खिलौने से खेल रहा है और कोई दूध की शीशी मुंह में लगाये पी रहा है। शिक्षित सेविकायें बड़ी तत्परता से इनकी देखभाल कर रही हैं। हमारे यहाँ तो उच्च परिवारों के बच्चे भी इतने आदर से नहीं पाले जाते। हमारे साथ की सुचित्रा बहन को इन बच्चों को देख अपने साल भर के लड़के की याद आ गई और उसे इन माओं की ऐसी निश्चिन्त जिन्दगी देख कर उनसे स्पर्धा हो रही है। उस बेचारी का तो सारा दिन अपने बच्चे को देख भाल में ही बीत जाता है।

यहाँ से कुछ दूर जाकर हमने फैक्टरी का अस्पताल देखा। सुयोग्य नर्स तथा अनुभवी डाक्टर इन मजदूरों के स्वास्थ्य का उत्तरदायित्व संभाले हैं। हर हफ्ते डाक्टरी परीक्षा होती है। चिकित्सा की आवश्यकता होने पर रोगी को अस्पताल भेज दिया जाता है। गर्भवती स्त्रियों को तीन मास की छुट्टी वेतन सहित दी जाती है और गर्भावस्था में भी उनकी पूरी देख भाल होती है। इस प्रकार हमने देखा और अनुभव किया कि फैक्टरी में काम करने वाले मजदूरों का जीवन मशीनी दुनियाँ तक सीमित नहीं है अपितु वे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में रुचि रखते हैं और उसकी पूर्ति करते हैं। हंगरी की हर फैक्ट्री के समीप ऐसे ही सांस्कृतिक भवन, शिशुपालनघर, खेल के मैदान और चिकित्सालय बने हुये हैं जहाँ बिना किसी आर्थिक व्यय के हर मजदूर इनका उपयोग कर सकता है। अन्त में "हंगरी-भारत मैत्री दृढ़ हो" 'विश्व शान्ति जिन्दाबाद' आदि नारों से इन मजदूरों ने हमें विदा दी। दोपहर का खाना खाने के बाद हम यहाँ का एकनामिक (अर्थशास्त्र) युनीवर्स्टी देखने गए।

यह युनिवर्सिटी हंगरी में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। लेक्चर हाल की बनावट और वहाँ का वातावरण अवर्णनीय है कमरे का



गोल आकार और उसमें सुन्दर ढंग से सजी हुई सात सौ कुर्सियाँ नीचे से ऊपर तक सीढ़ियों कि भाँति रचा गई है जो जिसमें सात सौ विद्यार्थियों के बैठने का स्थान है। लेक्चर सप्ताह में तीन या चार दिन दो घन्टे तक होता है, कभी-कभी तीन घन्टे भी लग जाते हैं। इसका समय चालीस मिनट बाद बजने वाली घन्टी पर नहीं अपितु लेक्चर पर आधारित होता है। यदि विषय गम्भीर तथा लम्बा है तो तीन घन्टे या इससे अधिक समय भी लग जाता है। इसके दाईं ओर एक कमरा मार्क्सवाद और लेनिन की फिलासफी के आधार पर लिखी गई अनेक पुस्तकों से सजा हुआ है। ये पुस्तकें फ्रेंच, इंगलिश, हंगरी और रशियन भाषाओं में लिखी हुई हैं। कोई भी विद्यार्थी किसी भी समय आकर इन पुस्तकों का अध्ययन कर सकता है। दूसरी ओर २,००,००० पुस्तकों से सजी हुई लायब्रेरी का कमरा अपना एक विशेष महत्व लिए है। यह हंगरी का सबसे बड़ा पुस्तकालय है। यहां सैकड़ों विषयों पर अनेकों दृष्टिकोणों से लिखी हुई अनेक पुस्तकें हैं। विद्यार्थी इच्छानुसार पुस्तकों को घर भी ले जा सकता है। इस यूनिवर्सिटी में २,००० लड़के पढ़ते हैं। इसमें ६५ प्रतिशत किसान वर्ग और मजदूर वर्ग के विद्यार्थी हैं। पचीस प्रतिशत लड़कों को वजीफा मिलता है। नौ सौ लड़के प्रथम वर्ष में हैं। "इन्टर-नेशनल पोलिटिकल इकनामिक्स इन्सटीट्यूट" (अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक अर्थशास्त्र) चतुर्थ वर्ष का अनिवार्य विषय है। इसमें मार्क्सवाद के आधारपर अन्तर्राष्ट्रीय इकनामिक्स (अर्थशास्त्र) की शिक्षा दी जाती है। इसके अतिरिक्त यहाँ प्लेग्राउण्ड, (खेलके मैदान) डाइनिंग रूम, (खाने के कमरे) ड्रेसिंग रूम आदि की शोभा अवर्णनीय है। कान्फ्रेंस रूम की विशालता भी देखते ही बनती है। बीच में लम्बी मेज और उसके दोनों ओर कुर्सियाँ गोलाकार रूप में रक्खी हैं। यहाँ प्रोफेसर्स की मीटिंग होती है और उसकी रिपोर्ट विद्यार्थियों को सुनाई जाती है। यह यूनिवर्सिटी हमें उस समय दिखलाई जब प्रत्येक कमरे में क्लासें लग रही थीं, प्रोफेसर के लेक्चर हो रहे थे और पीरियड समाप्त होने की घन्टियां बज रही थीं। हमें प्रोफेसर

से बातचीत करने का मौका मिला और हम लोगों ने शिक्षा पद्धति के विषय में अनेकानेक प्रश्न पूछे। लगभग दो घन्टे तक इसी विषय पर चर्चा होती रही। फिर एक प्रोफेसर ने भारत की परिस्थिति और पं० जवाहरलाल जी के विषय में जानने की इच्छा प्रकट की। वह प्रोफेसर १९३६ में पण्डित जी से मिल चुके थे और उनकी विचारधारा से विशेष रूप से प्रभावित थे। अन्त में उन्होंने भारत की उन्नति के बारे में अपनी शुभ कामनायें प्रकट करते हुये हमें विदा दी। आज हमारा सारा दिन इसी में गुजरा।

इस समय खाने आदि से निवृत्त होकर हम लोग यहां के आपेरा हाउस में आ बैठे हैं। रात के नौ बजे हैं बारह बजे तक घर पहुंच पायेंगे। हाल की सुन्दरता अवर्णनीय है। इसके सामने बम्बई का मेट्रो या लिबर्टी फीका जान पड़ता है। मखमल की गद्देदार कुर्सियों पर बैठ कर चारों ओर के वायुमंडल को देख अपार सुख का आनन्द लिया जा सकता है। दुभाषिया बीच में तथा हम सब भारतीय उसके अगल-बगल आगे पीछे बैठे हैं जिससे उसका अंग्रेजी अनुवाद सुन सकें। स्टेज के नीचे लम्बी सी गैलरी में चालीस व्यक्ति केवल वाद्य यंत्र बजाने वाले हैं। घूमते हुए रंगमंच की अनेक सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों ने ड्रामे के आकर्षण को दुगना कर दिया है। ड्रामे का कथानक बहुत कम समझ सके पर इसका संगीत और अभिनय सभी को पसन्द आया।

अगले दिन सबेरे ही हमारे दुभाषिये हमें यहाँ की पंचवर्षीय योजना दिखाने ले गए। आज एक नया दुभाषिया जिसे अंग्रेजी बहुत कम आती है हमारे साथ है क्योंकि पुराना कुछ बीमार पड़ गया। इसकी अधकचरी टूटी फूटी अंग्रेजी सुनकर सभी ठहाके मार-मार कर हंस रहे हैं और बेचारे का मजाक बन रहा है। अनुवाद करने के दौरान में बेचारा घबड़ाहट के मारे "बैल" की इंगलिश भूल गया जिसका जिक्र यहां की कृषि सम्बन्धी व्यवस्था समझाने में हुआ था। वह कभी पैर पटक कर, कभी सिर खुजला कर और कभी जोश में आ मुट्ठियें बांधकर समझाने का

प्रयत्न कर रहा था पर सफलता न मिली। अन्त में कुछ देर चुप रहने के बाद जोर से चिल्ला कर बोला "हसबैन्ड आफ दी काऊ" (गाय का पति) हम लोग हंसते-हंसते लोट पोट हो गए।

बस हमें यहाँ की पंचवर्षीय योजना दिखाने ले आई। अन्दर प्रवेश करते ही ऐसा जान पड़ा कि हंगरी की १६५४ में तैयार हो जाने वाली भावी सुन्दर दुनियां में पहुँच गए। आज यहाँ के बच्चे बच्चे ने पंचवर्षीय योजना पूरा करने का बीड़ा उठाया है। नए मकान बनेंगे, नए-नए स्कूल खुलेंगे, नई-नई यूनिवर्सिटियों का निर्माण होगा, नई फैक्ट्रियों और उनमें काम करने वाले मजदूरों की संख्या द्विगणित हो जायगी। इंजिन, जहाज, रेडियो और नई-नई मशीनों के आविष्कार से हंगरी का कोना-कोना समृद्धिशाली हो जायगा। सिनेमा हाल, आपेरा हाउस, कलचरल स्कूल और अनेक कलाओं का ज्ञान कराने के लिये नए स्कूलों का निर्माण होगा। टेलीविजन के रेडियो और टेलीफोन हंगरी के प्रत्येक घर में लग जायेंगे। लाखों रुपया उन नए इन्सटीटयूशन बनाने में खर्च किया जायगा जो मजदूरों और उनके परिवारों को स्वास्थ्य शिक्षा, कला, आदि ज्ञान कराने में पूर्ण सहयोग देंगे। मजदूरों और किसानों की सेवा के लिये स्थान-स्थान पर नरसरीज खुलेंगी। कल, लगभग सत्रह सौ लाख फॉरिन्टस नई इमारतों, नए माध्यमिक स्कूल, नए (एग्रीकल्चरल) कृषिस्कूल नए इन्डस्ट्रियल आपरेंटिक इन्सटीटयुशनस में खर्च किया जायगा। मजदूरों और किसानों की सौंस्कृतिक उत्थान करने के लिये स्थान-स्थान पर कलचरल होम, (सांस्कृतिक गृह) सिनेमा, लायब्रेरी (पुस्कालय) आदि का निर्माण होगा।

अनेक प्रकार के खेलों के लिये पृथक्-पृथक् मैदान होंगे। स्पोर्ट स्टेडियम बनाए जायेंगे। फैक्ट्रियों में १० प्रतिशत कार्य मशीनें करेंगी। जिससे फैक्ट्री का धुवां व्यक्तियों के स्वास्थ्य पर प्रभाव न डाल सके। अनेक गाँव शहरों में परिवर्तित हो जायेंगे। इस प्रकार १६५४ का हंगरी जनता के सुख और समृद्धि का केन्द्र बन जायगा। इस प्रदर्शनी का हाल बड़ा ही सुन्दर था। बारह कमरों में सजे हुए अनेक प्रकार के माडल



'प्रतिरूप' अनेकों नए नए डिजाइन के फर्नीचर और मशीनों के नवीन आविष्कार एक सुन्दर दृश्य उपस्थित करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पाँच वर्ष बाद हंगरी ने एक शताब्दी आगे बढ़ने का निश्चय कर लिया है।

प्रतिक्षण आगे बढ़ते हुए हंगरी के इस सुखी जीवन ने हमें बहुत ही प्रभावित किया। यहाँ के बच्चों ने तुम्हारे लिए एक चाकलेट का डिब्बा दिया है और वे तुम्हें अपना प्यार भेज रहे हैं।

हंगरी

३० सितम्बर सन् १९५१

आज हिसाब लगाने बैठे तो मालूम हुआ कि हमें यहाँ आए एक पखवारा बीत चुका है। नित्य का कार्यक्रम अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण समय की इस तीव्र गति का आभास ही नहीं हुआ वरना विदेश में बहुत जल्दी जी ऊब जाता है। इस सप्ताह में किसी दिन भी पोलेन्ड के लिए रवाना हो जाने की बात सुनाई दे रही है, आसपास की हंगेरियन युवतियाँ जो हमसे बहुत हिल-मिल गई हैं, हमारे जाने का नाम सुन कर रूआसी-सी हो रही हैं।

आज यहाँ कुछ गर्मी अधिक है। सबने अपने कोट उतार डाले हैं। हंगेरियन युवक पूछ रहे हैं "भारत में कैसी गर्मी पड़ती है।" हममें से एक ने उत्तर दिया "ऐसी भयंकर गर्मी कि गर्म लू खाकर लोग मर जाते हैं।" उन युवकों ने विस्मय से आंखें फाड़ते हुए कहा, "सच" !

सायंकाल का कोई प्रोग्राम न होने के कारण हम कुछ भारतीय, दुभाषिये को साथ ले बाहर टहलने निकल गये। हमें परस्पर अंग्रेजी में बातचीत करते देख राह चलते कुछ शिक्षित युवक एक दूसरे से कहने लगे, "इन भारतीयों की मातृभाषा अंग्रेजी से मिलती-जुलती जान पड़ती है जरा ध्यान से सुनो तो।"

दूसरे ने हमारी ओर कान लगा कर गौर से सुनते हुए कहा, "मालूम तो ऐसा ही जान पड़ता है, आस्ट्रेलियन और अंग्रेज व्यक्ति इन्हीं जैसी भाषा बोलते हैं।" तीसरा युवक जो थोड़ी बहुत अंग्रेजी जानता था कुछ विश्वास के साथ बोला "अरे ! मुझे तो हूबहू अंग्रेजी ही मालूम पड़ रही है, तुम अंग्रेजी से मिलती-जुलती कहते हो" और अपने

कथन की पुष्टि करने के लिए वह युवक हमारे दुभाषिये से आकर हमारी भाषा के बारे में पूछने लगा।

हमने उसे समझाया कि दो सौ वर्षों की अंग्रेजों की गुलामी ने हमें पंगु और अपाहिज तो बना ही डाला हमारी अपनी भाषा भी बेजान बना दी। यहाँ से चले जाने के बाद भी वे अपनी भाषा की छाप हम पर छोड़ गए हैं।

उस युवक ने फिर आश्चर्य से पूछा "तो क्या आप अपनी मातृभाषा नहीं जानते ?"

"मातृभाषा तो जानते ही हैं," हमने उत्तर दिया "पर गुलामी प्रवृत्ति हो जाने के कारण अपनी ही चीज की अवहेलना करना सीख गए हैं, दूसरे, हम सब लोग अलग अलग प्रान्तों के हैं एक दूसरे की भाषा नहीं समझ पाते, अतः समय की गति ने अंग्रेजी को ही हमारे भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम बना दिया यद्यपि अब अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को राष्ट्रभाषा पद से विभूषित किया गया है।"

पास खड़े ध्यान से सुनते हुए दूसरे युवक ने हमारी बात का उत्तर देते हुए कहा, "बहु भाषा-भाषी होने के कारण आपके देश को भी रूस का अनुकरण करना चाहिये। वहाँ रूसी सब सीखते हैं पर शिक्षा अपनी मातृभाषा में ही दी जाती है। हर व्यक्ति के लिये उसकी मातृभाषा माँ के दूध के समान आवश्यक है।" हम मन ही मन अंग्रेजी के प्रति अपने मोह को धिक्कारने लगे और परस्पर अंग्रेजी में बात करने के लिये लज्जित भी हुये।

हमारे डेलीगेशन (प्रतिनिधिमंडल) में एक सिक्ख प्रतिनिधि भी है। उसकी पगड़ी राह चलते व्यक्तियों के लिये आश्चर्य और कौतूहल की वस्तु बन जाती है। कोई उसे स्टेट का महाराजा समझता है कोई वहाँ का राय साहब। एक हंगेरियन कलाकार तो इस पगड़ी पर इतना मुग्ध हुआ कि बदले में ५०० फ्लोरिण्ट, (ढाई सौ रुपया) तक देने के लिये तैयार हो गया। इसी रात को सब लोग सिनेमा देखने गए और बारह बजे तक वापिस लौटे।



टैक्सटाइल मिल के श्रमिकों के खाने का हाल (Dining hall)

यहाँ की एक विशाल टैक्सटाइल मिल भी हमने देखी। स्वाधीनता से पूर्व यह मिल पहले पूंजीपति की सम्पत्ति थी अब इसका राष्ट्रीय-करण कर लिया गया है। इसके मालिक को यथानुसार रुपया दे दिया गया। कहते हैं अब वह इंगलैन्ड में जाकर वहाँ की एक बड़ी फैक्ट्री का मालिक हो गया है। यहाँ चार हजार मजदूर काम करते हैं जिनमें से पचास प्रतिशत स्त्रियाँ हैं इसका माल सोवियत रूस तथा योरोप के अन्य पूर्वी देशों में भेजा जाता है और बदले में कच्चा माल तथा यहाँ न बनने वाली मशीनें ली जाती हैं। स्वाधीनता से पूर्व पूंजीवादी व्यवस्था में यहाँ रुई से फैल जाने वाले पाउडर से मजदूरों को अनेक प्रकार की फेफड़ों की बीमारियाँ हो जाती थीं परन्तु अब इस पाउडर को पाइप द्वारा बाहर निकालने का प्रबन्ध कर दिया गया है। अब फेफड़े का एक भी मरीज इस फैक्ट्री में नहीं है। पंचवर्षीय योजना के अनुसार आगामी वर्षों में यहाँ अनेकानेक नई मशीनें लाने की योजना है यहाँ के स्टाफ की आय ७०० फलोरेंट (३५० रु०) और इंजीनियर की आय २०००फलोरेंट(१००० रु०) है। मजदूरों को उत्पादन के आधार पर ही वेतन दिया जाता है। इस मील में काम करते हुए हृष्ट-पुष्ट स्त्री पुरुषों को देख अपने यहाँ के अस्थि-पंजर शरीर वाले मजदूरों की याद आने लगी और दो विभिन्न शासन प्रणालियों का अन्तर स्पष्ट रूप से झलकने लगा।

दोपहर के समय मेरी तबियत कुछ ढीली सी हो गई अतः मैं बस में अकेला बैठा अपने साथियों के आने का इन्तजार कर रहा था। इतने में पास के स्कूल के बच्चों ने मुझे देखा और दूर से ही 'नीग्रो नीग्रो' चिल्लाते हुए दौड़ कर मुझे चारों ओर से घेर लिया। किसी ने मेरा हाथ अपने हाथ में लिया, किसी ने साड़ी का पल्ला और कोई मेरे बालों की चोटी से खेलने लगा, मानो मैं उनके मनोरंजन का साधन हूं। बच्चों के मास्टर से मालूम हुआ कि भारतीयों के संपर्क के अभाव के कारण हंगरी के बच्चे हर काले आदमी को नीग्रो समझते हैं।

हंगरी की स्वाधीनता का स्मृति चिन्ह (मानुमेण्ट) बुडापेस्ट के बीचों बीच एक छोटी सी पहाड़ी पर स्थित बहुत ही सुन्दर प्रतीत होता है। एक बड़ी भारी विशाल लौह मूर्ति हाथ में पत्ती लिये शान्ति का संदेश दे रही है। इसके दायें बायें दोनों ओर दो विशाल मूर्तियां हैं। एक बड़ा भारी मुगदर हाथ में लिये फासिज्म का अन्त कर रही और दूसरी हाथ में एक टार्च लिये आने वाले युगों को स्वाधीनता उत्थान और शान्ति का मार्ग दिखा रही है। इसके चारों ओर युद्ध में बलिदान हो जाने वाले सोवियत सिपाहियों के नाम लिखे हैं। ये मूर्तियाँ एक प्रसिद्ध हंगेरियन मूर्तिकार द्वारा बनाई गई हैं।

यहाँ का म्यूजियम ईसा से ३००० वर्ष पूर्व का इतिहास बताता है कि प्राचीन काल की दिनचर्या में किन-किन वस्तुओं का प्रयोग होता था, कैसे-कैसे देवताओं को पूजा जाता था और किस प्रकार की सभ्यता तथा संस्कृति का साम्राज्य था आदि बातों का पूर्ण दिग्दर्शन कराया गया है। दो हजार वर्ष पुरानी कितनी ही ममी (मृत व्यक्ति) ईजिप्ट से लाकर रखी हैं। इसके अतिरिक्त अठारहवीं, उन्नीसवीं तथा बीसवीं सदी के प्रसिद्ध कलाकारों की पेंटिंग बहुत ही आकर्षक और सुन्दर संग्रहीत हैं।

यहाँ से अस्सी किलोमीटर (लगभग पचास मील) की दूरी पर बना हुआ पावरहाउस हंगरी के नवयुवकों के रचनात्मक कार्य का परिचय दे रहा है। यह स्वाधीनता के पश्चात् तीन वर्ष की योजनामें तैयार किया गया है। यहाँ तीस प्रतिशत स्त्रियाँ काम करतीं हैं। काम का अधिकांश भाग मशीनों द्वारा होता है। यह हंगरी का सबसे विशाल पावर हाउस है। पंचवर्षीय योजना में इसी प्रकार के दस विद्युत घर बनाने का निश्चय किया गया है। इसके पास ही इसकी कोयले की खान है जहाँ इनको अपनी एक पृथक यूनियन है जो इन्हें समय-समय पर सहायता देकर इनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। यदि कोई मजदूर अपना मकान बनवाना चाहता है तो वह इस यूनियन से धन उधार ले सकता है और उसका भुगतान १४ साल तक कर सकता है।

यहां हमने वह स्थान भी देखा जहां पांच किलोमीटर लम्बी सुरंग बनाई जा रही रही है। इस सुरंग में से बिजली की गाड़ी द्वारा कोयला ढोकर बाहर लाया जाता है। स्वतंत्रता से पूर्व कोयले ढोने का कार्य मजदूरों द्वारा लिया जाता था, अब गाड़ी का प्रबन्ध हो गया है। इसके पास ही कण्ट्रोल आफिस है जहां मशीनों को बन्द करने और चालू करने के स्विच लगे हैं। इस सुरंग को अगले वर्ष तक समाप्त करने की योजना है।

बुडापेस्ट में ऐकेडेमी आफ साइन्स अपना एक विशेष स्थान रखती है। इसके छः सेक्शन हैं। इस ऐकेडेमी को सोवियत रूस से बहुत सहायता मिली है। बड़े बड़े दार्शनिक और वैज्ञानिक रूस से आकर यहां के व्यक्तियों के साथ मीटिंग करते हैं और अपने अनुभव बताते हैं। दोनों ओर से विचार विनिमय होता है और फिर एक नई योजना का आविष्कार करते हैं। स्वतंत्रता से पूर्व इन व्यक्तियों को स्टेट की ओर से किसी प्रकार की सहायता नहीं दी जाती थी परन्तु अब प्रत्येक दृष्टिकोण से इनकी कठिनाइयों का समाधान किया जाता है। यहाँ के पुस्तकालय में बहुत प्राचीन पुस्तकों का संग्रह किया गया है। ग्यारहवीं शताब्दी की लिपि के नमूने हैं, तेरहवीं सदी के बाइबिल का अनुवाद है। हाथ की लिखी हुई प्राचीन पुस्तकों को बहुत ही सहेज कर रखा गया है। यहाँ विश्व की अनेक भाषाओं की प्राचीन तथा आधुनिक पुस्तकें हैं दस लाख पुस्तकें अनेकों कमरों में पृथक-पृथक सेक्शन के हिसाब से बड़े ही सुव्यवस्थित ढंग से सजाई हुई हैं। इतनी पुस्तकों में से अपने विषय की पुस्तक छांटने में तनिक भी समय नहीं लगता। १६,००० पुस्तकें प्रति वर्ष नई खरीदी जाती हैं। १५०० मैगजीन प्रतिवर्ष विश्व के प्रत्येक कोने से आती हैं। हमारे यहाँ के वेद, पुराण, गीता, शकुन्तला आदि को विश्व के अमूल्य रत्न मान कर बड़े ही सुन्दर ढंग से सजाया हुआ है। पंचवर्षीय योजना के अनुसार एक सौ सत्तर लाख रुपया इस एकेडेमी पर खर्च किया जायगा।



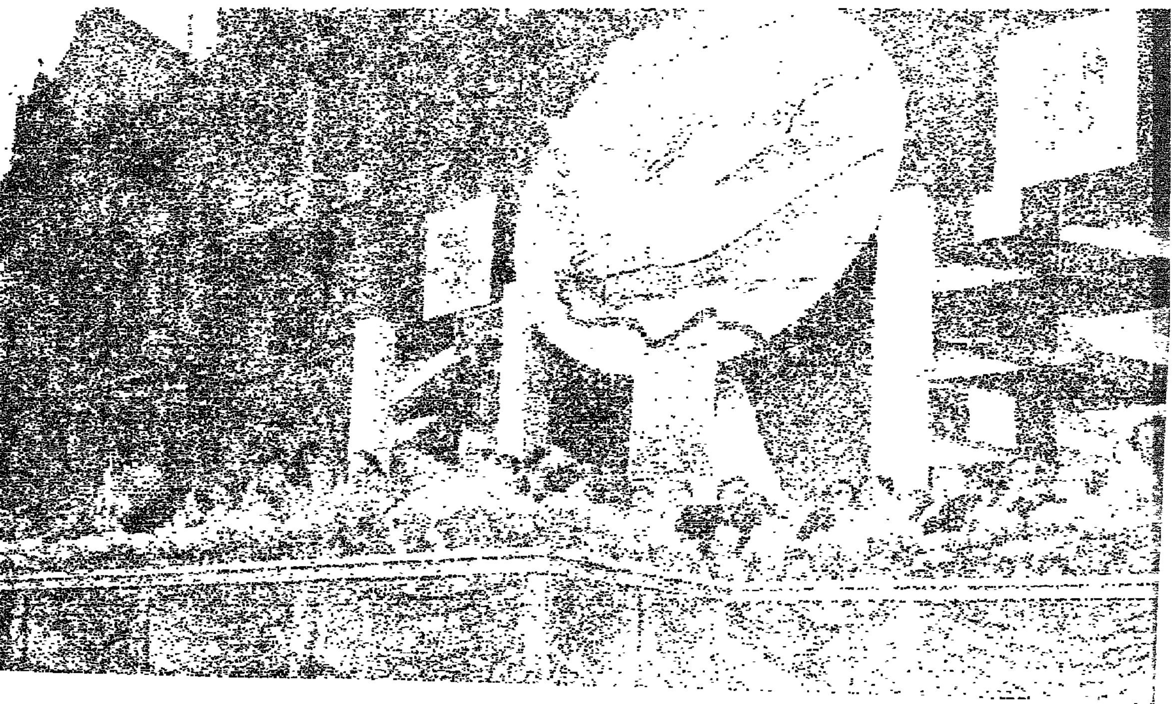
हंगरी के नौजवान

बुडापैस्ट से सत्तर किलोमीटर की दूरी पर एक नवीन नगर का निर्माण बड़े ही जोश तथा उत्साह से किया जा रहा है। इसे बनाते हुए केवल अभी डेढ़ वर्ष ही व्यतीत हुआ है प्रारम्भ में युवकों के छोटे ग्रुप ने इस कार्य का श्री गणेश किया था। उन्हें आरम्भ में बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। भूखे प्यासे रह कर उन्होंने रात-रात भर काम किया। पहले यहाँ बड़े-बड़े वृक्षों का जंगल था, सब कुछ उजाड़ था। इन युवकों ने इस काम का उत्तरदायित्व लेकर अपनी महान शक्ति का परिचय दिया।

यहाँ पर यूथ आर्गनाईजेशन (नौजवानों की संस्थाओं) में से हजारों की संख्या में युवक आकर काम करते हैं। इतवार की छुट्टी के दिन मजदूरों और किसानों के झुन्ड के झुन्ड यहां काम करने के लिये चले आते हैं यहां पचीस प्रतिशत स्त्रियां काम करती हैं। इन युवक युवतियों का लगन और परिश्रम निश्चय ही अनुकरणीय है। इस नगर का निर्माण बड़े ही सुन्दर रूप में किया जा रहा है। बच्चों का स्कूल होगा जिसमें एक हजार बच्चे शिक्षा ग्रहण करेंगे। अस्पताल में पाँच सौ मरीजों को रखने के लिए सुव्यवस्थित प्रबन्ध रहेगा। सिनेमा, थियेटर कलचर हाउस (सांस्कृतिक गृह) और स्पोर्ट्स स्टेडियम से सारा नगर गुलजार हो उठेगा। डैन्यूब नदी पर नौ पुल बनेंगे। अनेक फैक्ट्रियां होंगी। फैक्ट्रियों और शहर के बीच बड़े बड़े ऊंचे वृक्षों का जंगल होगा जिससे फैक्ट्रियों का धुआँ व्यक्तियों के स्वास्थ्य पर प्रभाव न डाल सके। छः छः मंजिल की ऊंची ऊंची इमारतें होंगी। एक एक भवन में तीन तीन कमरों के सौ सौ फ्लैट होंगे। फ्लैटों में हीटर, पानी, फ्लश [illegible] [illegible] का सुव्यवस्थित प्रबन्ध रहेगा। बीच के बाजार के दोनों ओर अनेक प्रकार की दुकानें होंगी। इस प्रकार सन् १९५४ तक यह ऊबड़ खाबड़ स्थान सुन्दर नगर में परिवर्तित हो जायगा जिसका नाम होगा डुना-पिन्ट। फैक्ट्री और शहर में आने जाने के लिए बसों और ट्रामों की व्यवस्था होगी। इस नगर की आबादी लगभग सत्तर हजार होगी। कहते हैं [illegible]

करते समय यहां दो हजार वर्ष पुरानी वस्तुयें मिली हैं जिन्हें म्युजियम में रखा गया है। एक बिल्डिंग केवल स्त्रियों के द्वारा बनाई गई है केवल ऊपर का कुछ भाग आदमियों ने बनाया है। यहाँ साधारण मजदूर को ७०० फ्लोरेन्ट प्रतिमास के हिसाब से मिलता है। इस नगर में लगभग पाँच सौ फ्लैट बन चुके हैं, शेष अधूरे हैं जिनके इस वर्ष पूरे हो जाने की आशा है। प्रत्येक बिल्डिंग के नीचे फूलों से सजा हुआ छोटा सा बगीचा है जो समस्त नगर के सौन्दर्य को दुगना कर देता है। पास ही मेडिकल इक्जामिनेशन हाउस (स्वास्थ्य परीक्षण गृह) होगा। प्रतिमास फैक्ट्री में काम करने वाले मजदूरों के स्वास्थ्य की परीक्षा की जाएगी कि कहीं उनका कार्य उनके फेफड़ों आदि पर बुरा प्रभाव तो नहीं डाल रहा है। नवयुवकों के द्वारा बनाई गई नवीन नगर निर्माण की ऐसी सुन्दर योजना को देख मन भाव विभोर हो सोचने लगा, कैसा सुखी जीवन है !

हंगरी में हमने अनुभव किया कि इस देश का सम्पूर्ण वायुमंडल शान्ति की सुरभि से सुगन्धित है। हर स्थान पर, हर क्षेत्र में हर व्यक्ति शान्ति की पुकार लेकर उठ खड़ा है। स्थान-स्थान पर स्टैलिन के ये शब्द लिखे दृष्टिगोचर होते हैं "शान्ति के लिये विश्व की शक्तिशाली आवाज युद्ध की सभी शक्तियों को परास्त कर देगी।" हंगरी का हर पुरुष, हर स्त्री, हर बच्चा यह भली प्रकार समझता है कि शान्ति की लड़ाई उनकी आजादी की लड़ाई है, नैतिक रक्षा की लड़ाई है और मानसिक और आत्मिक उन्नति की लड़ाई है। हंगरी की स्त्रियाँ इस शान्ति आन्दोलन की अगुआ प्रतीत होती हैं और अनेक पीस कमेटियों में काम करती हैं। यह कमेटियाँ हंगरी के गाँव-गाँव और शहर-शहर में स्थापित हैं। कोई भी व्यक्ति इन कमेटियों का मेम्बर हो सकता है। सन् १९४८ में बुडापेस्ट में होने वाली इंटरनेशनल डैमोक्रेटिक फेडरेशन (अंतर्राष्ट्रीय प्रजातन्त्रीय संघ) की दूसरी कान्फ्रेंस का मुख्य उद्देश्य शान्ति की रक्षा करना ही था। इस कान्फ्रेंस में इन हंगेरियन युवतियों ने सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह किया कि दूर-दूर देशों से आये हुये प्रतिनिधियों से सम्पर्क स्थापित करके उन्हें शान्ति रक्षा की



हंगरी की एक शांति सभा

लड़ाई के लिए सहमत किया। वे प्रतिनिधि इस कान्फ्रेंस से ऐसे प्रभावित हुए कि अपने-अपने देश में जाकर पीस कमेटियों (शांति समितियां) के सदस्य बन गए। यहाँ की स्त्रियाँ शान्ति आन्दोलन के लिए प्रत्येक क्षेत्र में खेत और कारखाने की पीस कमेटियों से लेकर नेशनल पीस कमेटी तक की मेम्बर हैं। नेशनल पीस कमेटी की उत्पत्ति स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् १९५० में हुई थी। वास्तव में यहाँ का स्त्री वर्ग शान्ति रक्षा के लिए जितना उत्साही और प्रयत्नशील है उतना अन्य कोई वर्ग नहीं। क्योंकि इन स्त्रियों ने पिछले दो महायुद्धों के वे कटु अनुभव सहे हैं जिनकी कल्पना मात्र से ही वे सिहर उठती हैं। इनके माँग के सिन्दूर धुल गए थे, इनकी गोदियाँ सूनी हो गई थी और इनके साथ बड़ी ही निर्दयता का व्यवहार किया गया। आज तीसरे महायुद्ध को देख ये बेचारी काँप उठती हैं और शान्ति का युद्ध अपनी पूर्ण शक्ति के साथ लड़ने का प्रण करती हैं। अपने भाषण में एक हंगेरियन युवति ने कहा:—

"हम हंगेरियन युवतियाँ फैक्ट्रियों में, खेतों में, दफ्तरों में और स्कूलों में जहाँ कहीं भी हैं अपनी पूर्ण शक्ति के साथ शान्ति की रक्षा करेंगी। हम भली प्रकार समझती हैं कि हमारे देश की उन्नति हमारी सन्तानों का विकास और उत्थान शान्ति काल में ही हो सकता है। हमें अपने बच्चों के सुन्दर भविष्य का निर्माण करना है, उन्हें सफल नागरिक बनाना है इसलिए हम शान्ति चाहती हैं।"

एक कलाकार ने कहा:—

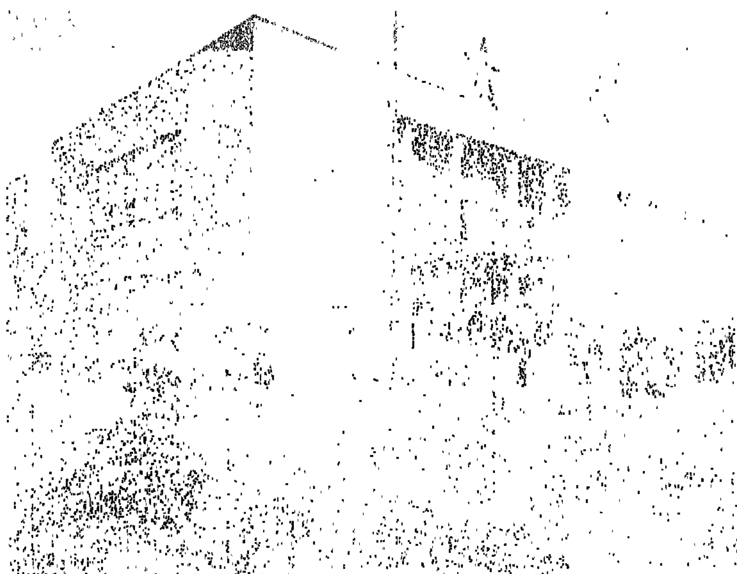
"मैं युद्ध का सबसे बड़ा शत्रु हूँ। युद्ध के दिनों में मैंने अपनी दो मासूम सुन्दर बच्चियों को खो दिया। मेरा घर जला दिया गया और मुझे कन्सनट्रेशन कैम्प में लेजाकर बहुत दुःख दिए गए। हमें अपने देश को, अपने बच्चों की, अपनी कला तथा साहित्य और संस्कृति की रक्षा करनी है। यदि युद्ध प्रिय व्यक्ति शान्ति के विरोधी हैं तो हम लाखों व्यक्तियों की आवाज उन्हें अवश्य ही परास्त कर देगी।"

यहाँ का स्त्री वर्ग अब जागरुक हो चुका है और अपने कर्त्तव्यों को भली प्रकार समझता है।

एक दिन हंगरी की पीस कौंसिल के सभापति ने हमें वहाँ की पार्लियामेन्ट में आमंत्रित किया और हमारे शान्ति सम्बन्धी अनेक प्रश्नों के उत्तर दिये। उसने कहा कि शान्ति आन्दोलन हंगरी में बहुत शक्तिशाली है। राकोशी के शब्दों में "आज शान्ति की समस्या विश्व की समस्या बन गई है।" हंगरी के युवक और युवतियों ने 'पंच ताकत सुलहनामा' पर ७०, १४८०० दस्तखत एकत्र किए हैं। दस्तखत करने वाले व्यक्ति अपनी इस जिम्मेदारी को भली प्रकार समझते हैं। दस्तखत कराने से पूर्व ये युवक और युवतियाँ उनसे तर्क करते हैं, उन्हें राजनैतिक परिस्थिति समझा कर शान्ति का महत्त्व बताते हैं। गली-गली, मुहल्ले मुहल्ले में शान्ति की आवाज़ सुनाई पड़ती है। यहाँ की पंचवर्षीय योजना भी सुन्दर शान्तिप्रद भविष्य के निर्माण की ही योजना है। सांस्कृतिक खेलों में भी शान्ति स्थापना के ही ड्रामे खेले जाते हैं।

हंगरी की फौज भी शान्ति के पक्ष में है। इसका उद्देश्य हमला करना नहीं अपितु हमलावरों से अपनी रक्षा करना है। फौज की स्थापना युद्ध प्रिय देशों तथा शान्ति प्रिय देशों में दोनों ही स्थानों पर की जाती है परन्तु दोनों के उद्देश्य भिन्न भिन्न होते हैं।

यहाँ के पादरी और विशप भी शान्ति आन्दोलन में भाग ले रहे हैं क्योंकि उनका मुख्य ईसाई धर्म (Christianity) भी शान्ति के आधारों पर आधारित है। यहाँ के पादरी ने हमें बताया कि वे शान्ति के धर्म में मानवता और अपने सिद्धान्तों में कुछ भेद नहीं देखते वे इसे [illegible] मानते हैं। शान्ति विश्वव्यापी है, यह वह मंत्र है जिसमें कोई भेद हो ही नहीं सकता। हंगरी के पादरी बिना किसी भेद भावना के शान्ति के कार्यों में भाग लेते हैं। ये लोग युद्ध के सदा विरोधी रहे हैं। [illegible] शान्ति के उपदेश देते हैं। उनकी नीति, उनके सिद्धान्त सब शान्ति के लिए ही हैं। यद्यपि इनकी एक स्वतंत्र विचार धारा होती



बुडापेस्ट का एक नवीन जनरल स्कूल



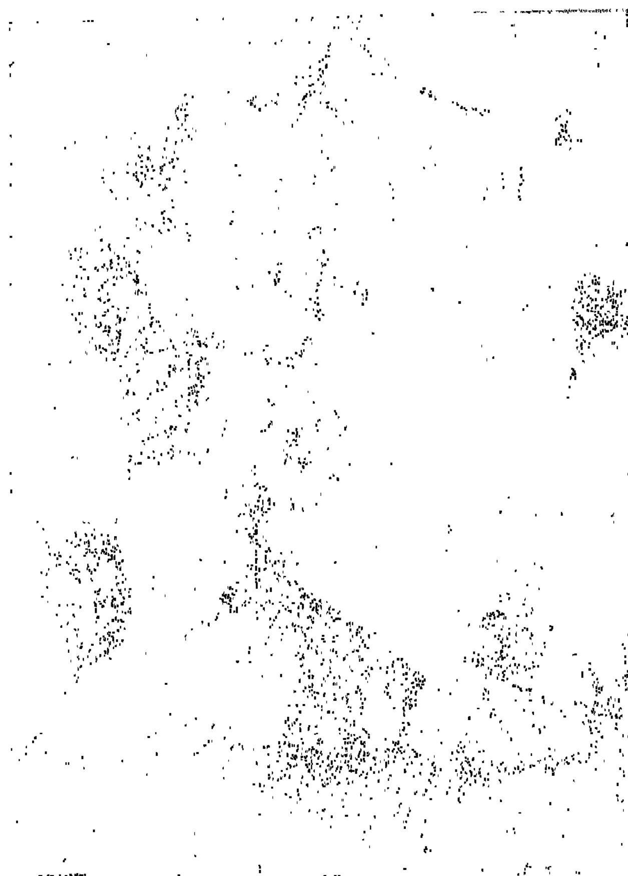
चित्रकारी की प्रतियोगिता में सफल बच्चे अपने पुरस्कार के साथ

है तथापि शान्ति के क्षेत्र में किसी प्रकार का मत भेद नहीं रखते। ५६०० पादरी आज हंगरी के कोने कोने में शान्ति का प्रचार कर रहे हैं।

इस प्रकार हमने देखा कि हंगरी की जनता शान्ति आन्दोलन में पूरा सहयोग दे रही है। इसका श्रेय यहाँ की जनवादी सरकार को ही है। शान्ति के इस अल्प काल में यहाँ की सरकार ने जनता के लिए अनेक उन्नति और सुख समृद्धि के साधन प्रस्तुत कर दिये हैं। जो धन पहले युद्ध के शस्त्र बनाने में व्यय किया जाता था वही अब जनता के सुख और उसकी उन्नति के लिए खर्च होता है।

और हाँ, राष्ट्र के भावी निर्णायक यहाँ के बच्चों की उन्नति के लिए जनवादी हंगरी बहुत प्रयत्नशील जान पड़ता है। जिस ओर भी नजर गई उसी ओर बच्चों का हँसता, खेलता और विकसित होता हुआ रूप दिखाई दिया।

स्वतंत्रता से पूर्व हंगरी में बच्चों की दो श्रेणियाँ थीं। एक धनिक-वर्ग के बच्चे और दूसरे मजदूर और किसानों के बच्चे। दूसरे वर्ग के बच्चों की अत्यन्त ही दयनीय दशा थी और वे चौदह वर्ष की उम्र में आते ही नौकरी या मजदूरी करने लगते थे, क्योंकि गरीब परिवार के लिए इसके अतिरिक्त कोई चारा न था। १६४५ में हंगरी में नव प्रभात का आगमन हुआ। प्रत्येक वर्ग के बच्चों के लिए प्रगति और विकास के सभी द्वार खोल दिये गए। तीन वर्ष की योजना में हंगेरियन बच्चों की अवस्था में आश्चर्यजनक उन्नति हुई। १,५,७२ स्कूलों का पुनर्निर्माण किया गया। सभी स्कूल आधुनिक नवीन ढंग पर बनाये गये हैं और एक नई शिक्षा प्रणाली को जन्म दिया गया है। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य तथा निःशुल्क हो गई है, परिणामस्वरूप निरक्षरता का बिलकुल अन्त हो गया है। जनरल स्कूल में आठ कक्षाएँ पास करने के पश्चात् बालक अपनी रुचि के अनुसार किसी भी क्षेत्र को चुन सकता है। सेकेण्डरी स्कूल और यूनिवर्सिटी की फीस बालक के माँ बाप के वेतन के अनुसार ही ली जाती है। स्वतंत्रता के पूर्व केवल ५ प्रतिशत मजदूर और किसान वर्ग के बच्चे सेकेण्डरी स्कूलों में शिक्षा



बुडापेस्ट की पायनियर रेलवे (बालकों की रेलों) के संचालक

प्राप्त करते थे, अब ६५ प्रतिशत बच्चे पढ़ते हैं। हंगरी की सरकार इन विद्यार्थियों को अधिक से अधिक सुविधायें प्रदान करने का प्रयत्न करती है।

पायनियर आन्दोलन हंगरी के बाल जीवन में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसका उद्देश्य बच्चों को अनुशासन तथा कर्तव्य पालन आदि की शिक्षा देना है। सात से लेकर चौदह वर्ष की अवस्था का कोई भी बच्चा इस संस्था का मेम्बर बन सकता है। इनकी देख रेख के लिए शिक्षित तथा अनुभवी टीचर होते हैं। सन् १९४६ में इस संस्था के केवल १,६०० मेम्बर थे, पर सन् १९५० में इनकी संख्या १,००,००० तक पहुँच गई है। बुडापेस्ट में हमने देखा कि ८५ प्रतिशत बच्चे इस पायनियर आन्दोलन के मेम्बर हैं। ये पायनियर अपने स्कूल में भी सबसे आगे रहते हैं अपने साथियों को अनुशासन, सफाई तथा कर्त्तव्य-पालन की शिक्षा देते हैं। इनकी अपनी एक अलग पत्रिका है जिसका [illegible] प्रकाश डालना है। इस पत्रिका में पायनियर [illegible] के बारे में आलोचना लिखते हैं। पहले यह पत्रिका मासिक थी परन्तु अब साप्ताहिक हो गई है। अच्छे पायनियर [illegible] को [illegible] जाता है और बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। इस प्रकार हमने देखा कि जनवादी हंगरी बच्चों के शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक स्तर को ऊंचा उठाने का भरसक प्रयत्न कर रहा है।

हंगरी के बच्चों का अत्यन्त ही सुन्दर तथा गम्भीर रूप तो पायनियर रेलवे में देखने को मिला। लगभग दो मील के भीतर आने जाने वाली रेलों का उत्तरदायित्व यहां के बच्चे ही सम्भालते हैं। इस पायनियर रेलवे का निर्माण सन् १९४८ में ३१ जुलाई को हुआ था इस रेलवे का सारा अनुशासन यहां के पायनियर के हाथ में है। दो तीन वयस्क [illegible] [illegible]। स्टेशन मास्टर, गार्ड और इंजन-ड्राइवर आदि सब छोटे-छोटे बच्चे ही हैं। रेलवे का [illegible] काम से बच्चे बहुत खुश होते हैं और अपने को बहुत बड़ा समझने लगते हैं। जो पायनियर पढ़ाई में अच्छा है और जिसे ग्रुप का लीडर यहां भेजता है वही पायनियर रेलवे का मेम्बर हो



हंगरी के Pioneers पायनियर्स

सकता है। उसे स्कूल में ही आठ सप्ताह का कोर्स करना पड़ता है। इस कोर्स में उसे व्यावहारिक और मौखिक दोनों प्रकार की शिक्षा अन्य बड़े व्यक्तियों की भाँति ही दी जाती है। इस समय इस पायनियर रेलवे में सात सौ पायनियर हैं जो बारी बारी से हर दसवें दिन यहां काम पर आते हैं। यहां हमने उन पायनियरों से भी मुलाकात की जो सोवियट पायनियर के आमंत्रित करने पर रूस गये थे और अनेक नए अनुभव सीख कर आए थे बच्चों का यह गम्भीर और जिम्मेदार रूप हमें बहुत ही पसन्द आया खेल खेल में उन्हें रेलवे के संचालन की व्यावहारिक शिक्षा मिल रही है।

बच्चों की सांस्कृतिक उन्नति के लिए भी नवीन हंगरी ने महत्वपूर्ण काम किए हैं। स्थान स्थान पर सांस्कृतिक गृहों का एक जाल सा बिछा हुआ दिखाई देता है, जिनमें सुयोग्य कलाकार बच्चों को उनकी रुचि के अनुरूप ही अनेक प्रकार की कलाओं का ज्ञान कराते हैं। राकोशी कलचरल हाउस" (राकोशी सांस्कृतिक गृह) न केवल हंगरी में, बल्कि योरोप भर में अपना एक विशेष महत्व रखता है। इसका निर्माण स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् १९४९ में तीन वर्ष की योजना के अन्तर्गत हुआ है। यहां के व्यवस्थापक ने हमें बताया कि पहले यहां छोटे छोटे मकान थे। बिजली, पानी, हीटर आदि का भी समुचित प्रबन्ध न था। आस पास गन्दे कूड़ों के ढेर लगे थे। पर अब यह हंगरी का एक दर्शनीय स्थान बन गया है। अपने कार्यों से अवकाश पाकर कितने ही मजदूर और उनके बच्चे यहां आते हैं और अनेक प्रकार की कलाओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं। हमें यह जानकर बहुत ही आश्चर्य हुआ कि इस सांस्कृतिक गृह में बारह कलाओं की शिक्षा देने का सुव्यवस्थित प्रबन्ध है। यहां पर राकोशी के महत्वपूर्ण विषयों पर भाषण होते हैं। थियेटर, नृत्य, संगीत और ड्रामे आदि के आयोजन भी आए दिन होते रहते हैं। एक सप्ताह का प्रोग्राम इश्तहारों में छप कर मजदूरों की बस्तियों में बांट दिया जाता है। यह सांस्कृतिक गृह यहां की लोकल कौंसिल के द्वारा बनाया गया है। इसके अगले हिस्से में बच्चों के किंडर गार्टेन हैं। शाम को आवश्यक कार्यों पर जाने वाली स्त्रियाँ

अपने बच्चों को यहां छोड़ जाती हैं जिनकी देख भाल सुयोग्य नर्सों द्वारा की जाती है इन बच्चों को कार्टून दिखाये जाते हैं। और अनेक प्रकार से उनका मनोरंजन किया जाता है। दाहिनी ओर विशाल लायब्रेरी कक्ष है जहां अनेक विषयों की बारह हजार पुस्तकें शीशे की अलमारियों में सुसज्जित है। पाँच हजार मजदूर इस लायब्रेरी में मेम्बर हैं। लायब्रेरी तीन बजे से लेकर दस बजे तक खुली रहती है। इसमें लगभग एक हजार पुस्तकें बच्चों के उपयोग की हैं। इस संस्कृति गृह में ३५ हजार मजदूर और उनके बच्चे भिन्न भिन्न कलाओंका ज्ञान प्राप्त करने आते हैं। छोटे छोटे बच्चों द्वारा बनाये हुए चित्र, खिलौने कागज के मकान और दस्तकारी आदि के नमूने देख कर हम बहुत ही प्रभावित हुए। हम लगभग चार सप्ताह रहे। हमने अनुभव किया कि नवीन हंगरी बच्चों के निर्माण और उनकी उन्नति के लिये अत्यधिक प्रयत्नशील है।

पोलैण्ड

२ अक्तूबर १९५१

हंगरी की सुरम्य वसुन्धरा और इसकी गोद में पले हंगेरियन निवासियों से विदा ले जिन्हें हम इस अल्प समय में ही बहुत प्यार करने लगे थे, पोलैण्ड के लिए रवाना हो गये। आधी रात के समय कड़कड़ाते हुए जाड़े में अनेक पोलिश युवक, युवतियाँ और बच्चे फूलों के गुलदस्ते हाथ में लिए हमारे स्वागतार्थ हमारी प्रतीक्षा में खड़े दिखाई दिये। गाड़ी को देखते ही आनन्द से उछलते हुए "भारतीय प्रतिनिधि जिन्दाबाद, पोलिश इण्डिया मित्रता चिरजीवी हो" आदि गगनभेदी नारों से उन्होंने हमारा हृदय से स्वागत किया। सर्दी का प्रकोप बढ़ता हुआ देख सबने अपने-अपने कोट उतार कर हमें पहना दिए। हमारे कानों में अपने गुलूबन्द बाँध दिये और पुराने चिर-परिचित मित्रों की भांति बस तक साथ-साथ चलते रहे। रात के लगभग दो बजे बस ने हमें यहाँ के एक रमणीक स्थान में आकर उतारा और हम बिस्तर पर लेटते ही निद्रालोक में पहुंच गए।

युद्ध से पूर्व पोलैण्ड अपनी सजावट तथा सौन्दर्य में योरोप भर में प्रसिद्ध था पर आज सब कुछ विध्वंस हुआ देख हमारा हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा है। जिस सड़क पर हम चल रहे हैं वहाँ का एक मकान भी युद्ध की लपटों से नहीं बच पाया। ऐसा लग रहा है मानों किसी शून्य नगर की उजाड़ गलियों में चल रहे हों। कुछ आगे बढ़े तो आठ मंजिल का विशाल बिल्डिंग भग्नावशेष में खड़ी हुई दिखाई दी। मालूम हुआ कि यह यहाँ का पब्लिक स्कूल था, जो नाजियों द्वारा आग में भस्म कर दिया गया। इसके समीप ही कुछ दूर पर ईंटों, पत्थरों और मिट्टी के ढेर नजर आए मानों किसी वीरान हुए प्रासाद के अवशेष खंडहर स्मृति के रूप में सजाए गए हों। आँखों में आँसू भरते हुए हमारे दुभा-

थिये ने बताया गोथिक स्टाइल का बना हुआ यह पुराना गिरजाघर समस्त पोलैन्ड में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता था, युद्ध में जो भीषण बम वर्षा हुई उसी ने आज इसे यह जर्जर रूप प्रदान कर दिया है। मीलों दूर तक फैले हुए युद्ध के ये बीभत्स स्वरूप मानों हमें गत महायुद्ध की करुण कहानी सुना रहे हैं। जली हुई विशाल इमारतों और खंड-खंड हुए गगनचुम्बी प्रासादों को देखते हुए हम दुख के अथाहसागर में डूबे हुए आगे बढ़ रहे हैं। कहते हैं युद्ध का भयंकर और प्रलयंकारी रूप जैसा पोलैन्ड ने देखा है, अन्य किसी देश ने नहीं। सुन्दर और रमणीक वारसा खाक के ढेरों में परिणत हो गया था। पिच्चासी प्रतिशत बिल्डिगों को स्वाहा कर डाला था। सत्तर प्रतिशत उद्योग धंधे बर्बाद हो गए थे और छः लाख चालीस हजार पोलिश व्यक्ति तड़प-तड़प कर मकानों के नीचे, कन्सन्ट्रेशन कैम्प में या बमों की गर्जना के कारण मौत के शिकार हुए थे। वारसा को धूल के ढेरों में देखकर यह प्रश्न उठता था कि पोलेन्ड की राजधानी किसे बनाया जाए?

पर फासिस्टों से मुक्ति पाते ही पोलैंड की जनता ने अपनी मातृभूमि को नया रूप प्रदान करने का प्रण किया। तीन वर्ष की योजना में फूटे हुये खंडहर, ऊंची ऊंची इमारतों में परिवर्तित हो गए। नष्ट-भ्रष्ट और उजड़े हुये नगरों का नव निर्माण होने लगा। विध्वंस हुए गिरजाघर और एतिहासिक भवनों को उसी प्राचीन स्टाइल पर बनाया जाने लगा। टूटे हुए पुल और नष्ट हुए सांस्कृतिक गृहों का पुनः निर्माण हुआ। इस तीन वर्ष की योजना का मुख्य उद्देश्य विध्वंस हुई फैक्ट्रियों, ईमारतों, मकानों और गिरजाघरों आदि का नव निर्माण करना था। इन तीन वर्षों में ही परतंत्र पोलैंड और स्वतंत्र पोलैंड का अन्तर स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा। इस योजना में बहुत कुछ व्यक्तिगत सम्पत्ति का भी अन्त कर दिया गया। बड़ी बड़ी ताल्लुकेदारियां, जागीरें, और रियासतें तोड़ दी गई। जमीन किसानों में बांट दी। उद्योग धंधों पर मुनाफाखोर पूंजीपतियों के बदले समाज का अधिकार हो गया। अभारी प्रोदेशल इन्डस्ट्रीज का

राष्ट्रीयकरण किया गया। अब इनकी आमदनी पूंजीपतियों की थैली में नहीं जाती अपितु समाज के सुख और उत्थान के लिए खर्च की जाती है। इन सबका परिणाम यह हुआ कि उद्योग धंधों की उपज में सन् १६३६ की अपेक्षा सत्तर प्रतिशत अधिक वृद्धि होने लगी। ऊनी कपड़े की उपज की मात्रा १६३६ की अपेक्षा पैंतालिस प्रतिशत अधिक बढ़ गई। यहां की राष्ट्रीय आय पहले की अपेक्षा पच्चीस प्रतिशत अधिक होने लगी। अपनी अपनी जमीनों को प्राप्त कर किसान वर्ग भी दूने उत्साह और परिश्रम से अपने कर्त्तव्य में जुट गया। पोलैंड की इस उन्नति का मुख्य कारण पूंजीपतियों और जमींदारों का अन्त कर देना ही था। अब पूंजीपतियों का पोलैंड जनता का पोलैंड बन गया है अतः प्रत्येक व्यक्ति में काम करने का जोश तथा उत्साह दिखाई देता है। अब यहाँ पहले की भाँति मजदूरों और किसानों की वेतन बढ़ाने की मांग के लिए हड़तालें नहीं होतीं, विद्यार्थियों के जलूस नहीं निकलते, और बेकारी की समस्या युवकों के मस्तिष्क को बोझिल नहीं बना देती। अब तो यहाँ कामों के क्षेत्र इतने विस्तृत हो गए हैं कि बेकारी के बजाय व्यक्तियों की कमी अनुभव होती है। कल हम मकान बनाने वाले मजदूरों की संस्था में गए। वहाँ के व्यवस्थापक ने हमसे कहा हमें पचास हजार साधारण मजदूरों की (अन-स्किल्ड लेबर) की आवश्यकता है, यहाँ इनका अभाव है, किसी और शहर से बुलवाने की सोच रहे हैं। हमारे नौकर ने मुस्कराते हुए कहा "भारत से बुलवा लीजिए"। उस पर सभी हंसने लगे और उन्होंने हमारे भारत की बेकारी का अन्दाज लगा लिया।

अब छः वर्ष की योजना पोलैण्ड की यह दूसरी योजना है जिसे सफल बनाने के गम्भीर प्रयत्न किए जा रहे हैं। इस योजना में पोलैण्ड में मोटरें, बसें, [illegible], ट्राम, इंजिन, मशीनें और नए जहाज आदि उन वस्तुओं का निर्माण किया जाएगा जो इससे पूर्व पोलैण्ड में कभी नहीं हुआ था। इस योजना का मुख्य उद्देश्य मशीन और मैटीरियल की मात्रा को अधिक से अधिक बढ़ाना है। इस योजना के पहले काल में मशीनों

की मात्रा बढ़ाने का प्रयत्न किया जायगा जिससे अन्य वस्तुओं की उपज की मात्रा में वृद्धि हो सके। दूसरे काल में बचे खुचे पूंजीपतियों का बिल्कुल अन्त कर दिया जायगा। ये पूंजीपति अब भी जनता के राज्य में कभी कभी सिर उठाकर अपना अस्तित्व स्थापित करने का असफल प्रयास करते हैं। इस योजना के तीसरे काल में ज़मींदारी का बिल्कुल अन्त हो जाएगा जो अब भी किसानों की जमीनों को ललचाई दृष्टि से देखते हैं और हड़प जाने का प्रयत्न करते हैं। चौथे काल में पोलैन्ड अपना सम्बन्ध सोवियत यूनियन तथा अन्य पूर्वी देशों से और भी दृढ़ करेगा जिससे वस्तुओं के आयात और निर्यात करने की मात्रा अधिक बढ़ जायगी। इसके पश्चात् जनता के (जीवन स्तर) स्टैन्डर्ड आफ लिविंग में उन्नति की जायगी प्रत्येक घर बिजली, हीटर, गैस फरनीचर आदि से सुसज्जित और सजा होगा।

अनेक सांस्कृतिक गृहों का निर्माण होगा, जिनमें मजदूर और किसान अपने कामों से अवकाश पा कला और साहित्य का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। कोयलों की खान में १६४६ की अपेक्षा पैंतीस प्रतिशत अधिक उपज बढ़ जाएगी। एक वर्ष में ही ट्रैक्टर्स की संख्या ११,००० तथा सम्मिलित खेतों की मात्रा सात सौ तक पहुंच जाएगी। २५,००० मोटर, सारी पोलैन्ड में आने जाने के साधनों की कमी को पूरा करेंगी। फूड इन्डस्ट्रीज की मात्रा में भी पर्याप्त वृद्धि की जाएगी और शक्कर का उत्पादन दस लाख एक सौ टन प्रतिवर्ष तक पहुँच जायगा। युद्ध में मकानों के नष्ट हो जाने के कारण जनता को जिस जटिल समस्या का सामना करना पड़ा, इस योजना में अब इसका समाधान कर दिया गया है। मकानों की संख्या ७००,००० तक पहुँच जाएगी। अठारह कोयलों की खानों में नई-नई मशीनों का उपयोग किया जाएगा जिससे उपज में वृद्धि और परिश्रम में कमी हो जाएगी। मकान बनाने में भी मशीनों का प्रयोग किया जाएगा। हमने देखा जो ईंट मजदूरों के द्वारा ढोई जाती थी वही काम आज मशीनें कर रही हैं। छः वर्ष की योजना में फैक्ट्री में काम करने वाली स्त्रियों की संख्या दस लाख बीस हजार तक हो जाएगी जिससे स्त्रियां भी

स्त्री को घर में बेकार बैठने का अवसर नहीं मिलेगा। मजदूरों की आय में चालीस प्रतिशत वृद्धि की जाएगी। यह वृद्धि या तो अधिक वेतन के द्वारा की जाएगी और या वस्तुओं का मूल्य घटा कर होगी। कम उम्र के युवक और युवतियों को पहले टेकनीकल स्कूल में स्पेशल ट्रेनिंग दी जाएगी फिर उन्हें फैक्ट्री में काम करने के लिए भेजा जाएगा। छः वर्ष की योजना के अनुसार दस लाख युवकों को टेकनिकल स्कूल में स्पेशल ट्रेनिंग के लिए भेजा जाएगा, इस प्रकार १९५६ का पोलैन्ड वह सुन्दर पोलैन्ड बन जाएगा। जिसे देख सभी आश्चर्यचकित से रह जाएंगे।

आज हम पोलैन्ड के 'बिटम' नामक नगर को देखने निकले हैं। यह पोलैन्ड का एक छोटा सा शहर है जो औद्योगिकरण की दृष्टि से बहुत आगे बढ़ गया है। यहाँ अनेक फैक्ट्रियाँ तथा कोयले की खानें हैं। दोपहर के समय हम यहाँ का प्रसिद्ध टेकनिकल कालेज देखने आए। यहाँ फैक्ट्री या किसी संस्था की ओर से बुद्धिमान और प्रतिभा-शाली युवकों को चुन कर टेकनीकल, ट्रेनिंग के लिए भेजा जाता है यहाँ कोर्स में आधुनिक विज्ञान और नई मशीनों की प्रेक्टिकल तथा थ्योरिटिकल दोनों ही ट्रेनिंग दी जाती है। यहाँ विद्यार्थियों के रहने, खाने पीने, तथा पढ़ने लिखने आदि का सुव्यवस्थित तथा मुफ्त प्रबन्ध है। यहाँ की पुस्तकें आदि का खर्चा भी स्टेट उठाती है। इन प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को योग्यतानुसार वेतन भी दिया जाता है जिससे इस धन से उनके परिवार का भरण पोषण हो सके। यहाँ पर लगभग एक हजार विद्यार्थी हैं जिनमें से पचास लड़कियाँ हैं। यहाँ सप्ताह में एक दिन प्रत्येक मंगलवार को सांस्कृतिक कलचरल प्रोग्राम होता है जिसमें अनेक विद्यार्थी नृत्य, संगीत, गायन, आरकेस्ट्रा आदि में भाग लेते हैं। यह स्कूल गत महायुद्ध में बिल्कुल नष्ट भ्रष्ट हो गया था, स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् तीन वर्ष की योजना में इसका पुनःनिर्माण हुआ है। यहाँ के कितने ही विद्यार्थियों ने हमें उन्हें यहाँ चुनकर भेजे जाने का कारण बताया था। एक स्टील फैक्ट्री में काम करने वाले मजदूर युवक ने हमें बताया कि आठ घन्टे के

काम को उसने तीन घन्टे में ही समाप्त कर दिया। उसकी इसी प्रतिभा को देख फैक्ट्री ने उसे यहाँ इस स्कूल में टेकनीकल ट्रेनिंग के लिए भेजा है। पोलेन्ड की छः वर्ष की योजना के अनुसार सारे पोलेन्ड में ऐसे बीस टेकनीकल स्कूल होंगे जिनमें यहाँ से भी अधिक सुविधायें देने का प्रबन्ध किया जाएगा।

बिटम से चल कर आकाश चुम्बी हरे-हरे वृक्षों को फर्राटे से पार करती हुई हमारी बस क्रैको के अत्यन्त ही सुन्दर होटल में आकर ठहरी। क्रैको पोलेन्ड का एक प्रसिद्ध स्थान है यहाँ की आबादी लगभग १७०,००० है। क्रैको दसवी सदी से लेकर सत्रहवीं सदी तक पोलैन्ड की राजधानी रह चुका है। यहाँ चौंसठ चर्च और पाँच बड़े-बड़े कालेज हैं। यहाँ की यूनिवरसिटी पोलैन्ड की सबसे प्राचीन यूनिवरसिटी है। यहाँ आए दिन सोवियट से आए हुए सुयोग्य विद्वानों का भाषण होता है जिसमें शिक्षा प्रणाली के विषय में अनेक नवीन सुझाव उपस्थित किये जाते हैं। चौदहवीं शताब्दी का एक पुराना चर्च प्राचीन संस्कृति, सभ्यता, कला और धर्म का प्रतिनिधित्व करता है। तेरहवीं शताब्दी का प्राचीन कासल यहाँ का दर्शनीय स्थान है। इसमें बने हुए एक सौ चार कमरे अपनी पृथक-पृथक विशेषता लिए हैं।

क्रैको से बीस मील की दूरी पर 'नवाहुता' नामक एक नए नगर का नव-निर्माण यहाँ के नवयुवकों द्वारा किया जा रहा है। पहले यह एक छोटा सा गाँव था जहाँ टूटी-फूटी झोपड़ियें और चारों ओर उगे हुए झाड़ झंकार अव्यवस्था का परिचय दे रहे थे।

क्रैको से पचास मील की दूरी पर स्थित यहाँ का कन्सेनट्रेशन कैम्प मानव के रौद्र और भयानक रूप का परिचय देता है। यहाँ वह खूनी नाटक खेला गया जो आजतक विश्व के इतिहास में किसी ने कभी नहीं देखा। यहाँ नात्सियों की बर्बर वृत्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई थी। जेह मरने वाले व्यक्तियों को पकड़ पकड़ कर छोटी और तंग कोठरियों में

ठूंस दिया जाता था। बरफ पड़ते हुए जाड़े में स्त्रियों को वस्त्रहीन करके बाहर मैदान में खड़ा कर दिया जाता था जिनमें से कुछ बेहोश हो जाती थीं और कुछ इस जिन्दगी से छुटकारा पाकर बरसाती कीड़ों की भांति जमीन पर रेंगने लगती थीं। उनके साथ व्यभिचार किया जाता था। उनके गर्भ गिरा दिये जाते थे जिससे उनके वंश का नाम निशान भी शेष न रहे। गैस चैम्बर में चार सौ व्यक्तियों को पन्द्रह मिनट में गैस के द्वारा जला दिया जाता था जो अधजले रह जाते थे उन्हें दूसरे ग्रूप के साथ पुनः जलाया जाता था। चार सौ व्यक्तियों का एक ग्रूप जल रहा होता था दूसरा बाहर खड़ा प्रतीक्षा करता था। तंग कोठरी में भरे हुए सैकड़ों व्यक्तियों के पीछे भूखे जंगली जानवरों को छोड़ दिया जाता था। जहां वे जानवर मनचाहे ढंग से जीवित मानव शरीरों को मृत शरीरों से भी अधिक बुरी दशा करते थे। जो व्यक्ति हुकुम की पाबन्दी न करता था उसे तुरंत ही गोली से उड़ा दिया जाता था। वीभत्सता के इस प्रतीक कैम्प को ज्यों का त्यों ही रक्खा गया है इसका निर्माण नहीं किया गया ताकि आने जाने वाले व्यक्ति नात्सियों के कुत्सित कर्मों का अन्दाजा लगा सकें।

कल हम क्रेको से बीस मील की दूरी पर नए नगर निर्माण की नवीन योजना देखने गए। इन लोगोंने इस नगर का नाम नवाहुता रखा है। पहले यह गाव भंकार और टूटी फूटी झोंपड़ियों से भरा हुआ पुराना गांव था। अब इसी जीर्ण शीर्ण गांव को एक सुन्दर नगर का रूप दे दिया जाएगा। गांव कतई बदल जाएगा। टूटी फूटी झोंपड़ियां सुन्दर सुन्दर ऊँची ऊँची बिल्डिंगों का रूप ले लेंगी। यहां काम करने वाले नव-युवक इस काम के अतिरिक्त टैक्नीकल काम सीखते हैं। ये युवक अपने साथियों को यहां आकर काम करने के लिए प्रेरित करते हैं जिसके फलस्वरूप छुट्टी वाले दिन नवयुवकों के समूह के समूह यहां आकर बड़े जोश और उत्साह के साथ इसके निर्माण में जुट जाते हैं। यहाँ के युवकों ने एक दिन में अठारह अठारह घंटे काम करके कुछ बिल्डिंगों को समाप्त किया है। इस नगर निर्माण में रूस से बहुत सहायता मिल रही है। बड़े बड़े

इंजीनियर आकर नवीन सुझाव उपस्थित करते हैं। कितनी ही मशीनें रूस ने भेजी हैं। इस नगर में एक लाख नागरिकों के रहने की योजना है सत्रह पुल बनाये जायेंगे। यहां बिस्तुला नदी से पानी लाकर एक बन्दरगाह बनाने की योजना भी है जहां छोटे छोटे जहाजों के ठहरने का प्रबन्ध होगा। यह नया नगर छः वर्ष की योजना में बिल्कुल समाप्त हो जाएगा। यहां काम करने वाली स्त्रियों की संख्या तीस प्रतिशत है। एक उन्नीस बरस की लड़की ट्रैक्टर ड्राइवर है।

पाँच घन्टे रेल का सफर करके हम लोग पोलैन्ड के पोजना नामक उस सुन्दर शहर में पहुँचे जहाँ की रम्य भूमि की विराम दायनी गोद में बस्तुला नदी असंख्य ऐतिहासिक गाथाओं को अपने आगार में छिपाए सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों से घिरी हुई अठखेलियां कर रही है। लगभग दो लाख की आबादी संभाले पोजना पोलेन्ड का महत्वपूर्ण शहर है। यहाँ जगमग करते हुए चालीस चर्च प्राचीन कला, प्राचीन सभ्यता और प्राचीन संस्कृति का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। दसवीं शताब्दी का पुराना चर्च गत महायुद्ध में नाज़ियों के द्वारा बिल्कुल नष्ट भ्रष्ट कर दिया गया था, अब उसका बिल्कुल उसी पुराने स्टाइल पर पुनः निर्माण हो रहा है। बारहवीं शताब्दी के सुन्दर इतिहास प्रसिद्ध चर्च को भी युद्ध की लपटों ने स्वाहा कर डाला था। बड़ी-बड़ी सुन्दर विशाल मूर्तियें और ऊँचे-ऊँचे सोने के गुम्बज मिट्टी के ढेरों में परिवर्तित हो गए पर यहाँ की उत्साह भरी जनता ने तीन वर्ष की योजना में इसके पुराने चित्र के आधार पर बिल्कुल उसी पुराने स्टाइल में इसका पुनःनिर्माण किया है। चित्रकारी, आरकीटैक्चर, मूर्तियों, पत्थर, रंग-बिरंगे शीशे आदि किसी में भी तनिक भी अन्तर नहीं है। कहते हैं प्राचीन काल में सिपाही युद्ध में जाने से पूर्व यहीं आकर इसी चर्च के पत्थर पर अपनी तलवार तेज करके युद्ध में जाते थे।

युद्ध में शहीद हुए सोवियत सिपाहियों की कब्रें एक छोटी सी पहाड़ी पर स्थित "सोवियत स्मारक" के रूप में देखी। हम सोचने लगे न जाने

कितने शहीदों की जिन्दगियों पर आज ये देश अपने यहाँ समाजवाद की रचना कर सके हैं।

योजना में होने वाली प्रदर्शनी पोलैन्ड की जनता की कार्यक्षमता का आभास करा रही है। यहां उन आधुनिक नवनिर्मित वस्तुओं का प्रदर्शन किया गया है जो पोलैंड में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से बनाई जाने लगी हैं। पहिले इन वस्तुओं को बाहर से मंगवाया जाता था अब इनका निर्माण नए पोलैन्ड में हो रहा है। अनेक प्रकार की मशीनें, रेफ्रीजरेटर, फरनीचर, रेडियो, टेलीफोन, हीटर, इंजेक्शन, आपरेशन के औजार, डाक्टरी सम्बन्धी वस्तुयें, अनेक वाद्य यंत्र, पियानो, वायलन, व अन्य आरकेस्ट्रा, हाथ की कारीगरी की वस्तुयें, स्वेटर कोट, फ्राकें, बच्चों की खेल वाली गाड़ियां, कुर्सियां, खिलौने और शीशे के अनेक कला पूर्ण बर्तन आदि सभी वस्तुयें अब यहां तैयार होने लगी हैं। जो वस्तुयें पहले बाजार से आकर दुगने दामों पर बिकती थीं वही आज यहाँ तैयार होकर सस्ते दामों पर जनता के पास आती हैं।

पोलैंड के तोरून स्टेशन पर पहुंचते ही थोड़े से भारतीय सैकड़ों तोरून के नागरिकों से घिर गये और अनेक युवक युवतियाँ और बच्चे खुशी के आवेश में भारत पुत्रों का नारा करने लगे। "पोलैंड भारत मित्रता जिन्दाबाद" "विश्व शान्ति जिन्दाबाद" आदि गगन भेदी नारों से तोरून की समस्त दिशायें गूँजने लगीं। लाल लाल झंडे लिए हुए इन युवक युवतियों के मुस्कराते हुये चेहरों को देखते ही दिन भर की थकान दूर हो गयी।

तोरून पोलैण्ड का एक छोटा सा शहर है जो एक लाख आबादी संभाले प्राचीन और नवीन दोनों कलाओं का सुन्दर प्रदर्शन करता हुआ प्रतीत होता है। यह पोलैण्ड का सबसे प्राचीन शहर है। यह शहर तेरहवीं शताब्दी की कला सभ्यता और आरकीटेक्चर आदि का पूर्णतया प्रतिनिधित्व करता है। यहाँ मकानों के ऊपर तीन तीन खिड़कियाँ बनी हुई हैं जो प्राचीन नियम का दिग्दर्शन कराती हैं। पहले किसी को अपने मकान में तीन से अधिक खिड़की बनवाने का अधिकार न था।

यहां तीन खिड़की वाली ऐतिहासिक बिल्डिंग भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं जिसमे १६ फर्वरी १४७३ में विश्व विख्यात तत्ववेता कोपरनिका ने जन्म लिया था। यह पहला व्यक्ति था जिसने यह नवीन अनुसन्धान किया कि सूर्य पृथ्वी के चारों ओर नहीं अपितु पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है। हाथ से दुनियाँ के गोले को लिए कोपरनिका का विशाल स्मारक दिखाई दे रहा है। अपने जीवन के प्रारम्भिक बीस वर्ष कोपरनिका ने तोरून के इस मकान में ही व्यतीत किये थे। यह पुराना शहर दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—एक पौराणिक भाग में तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी के अनेक सुन्दर सुन्दर चर्च, पुराने टाउन हाल, और पुराने मकान, तथा पुरानी बिल्डिंग हैं। टाउन हाल और कुछ चर्च बिलकुल गॉथिक स्टाइल पर बने हुए हैं। प्राचीन काल में धनिक वर्ग के व्यक्ति चर्च में अपनी सीट रिजर्व करा लेते थे जिसमें उन्हें बैठकर प्रार्थना करने की सुविधा रहती थी। परन्तु अब यहाँ ऐसा कोई नियम नहीं है। इस भेद भाव का अन्त कर दिया गया है।

यहाँ का म्यूजियम प्राचीन सभ्यता, कला और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें दूर दूर से पुरानी वस्तुओं को मंगवाकर एकत्र किया गया है।

इसके आधुनिक भाग का निर्माण बीसवीं शताब्दी में हुआ है। इसमें अनेक नए मकान, कोर्ट, बाग बगीचे, और बच्चों के स्कूल तथा कालिज हैं। यहां की यूनिवरसिटी में दस हजार विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते हैं। फिजिक्स और केमिस्ट्री का एक कालेज स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात [illegible] में बिल्कुल आधुनिक स्टाइल पर बनाया गया है। जिसमें चार हजार विद्यार्थी [illegible] करते हैं। तोरून खेती प्रधान शहर है।

वारसा के विषय में फिर लिखूंगी।

जैकोपानी पोलैन्ड

५ अक्तूबर सन् १९५१

यह पत्र मैं पोलैन्ड की अति रमणीय पर्वत माला की हिमाच्छादित चोटी पर बैठी लिख रही हूं। इस शैल सुन्दरी को यहां के लोग जैकोपानी कहते हैं। इस स्थान का वातावरण प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर दिखाई दे रहा है। चारों ओर बर्फ का साम्राज्य देख ऐसा प्रतीत होता है मानों आज इस शैलवधू ने श्वेत वस्त्रों से अपना साज श्रृंगार किया है। कहीं कहीं हरे भरे बाग, उपवन और वाटिकायें भी नजर आ रही हैं। सभी कुछ यहां बैठ कर बहुत सुन्दर लग रहा है। स्थान स्थान पर बिखरी हुई इन सौन्दर्य-निधियों को देख ऐसा प्रतीत होता है मानों विश्व भर में इस गिरिश्रृंग को सबसे अधिक प्राकृतिक वैभव प्राप्त हुआ है।

बदली का दिन है, पर भगवान भास्कर कभी कभी बादलों के नीले आवरण को हटा छुप छुप कर झांकते हुऐ दिखाई दे जाते हैं। सर्दी बहुत है। बर्फीली हवा के झोंकों ने हमारे होंठ ऐसे नीले कर दिए हैं मानो हमने जामुन खाई हैं या पहाड़ी [illegible]। सिर से पांव तक ऊनी कपड़ों में लिपटे हुए भी हम लोग जाड़े के कारण सी सी कर रहे हैं। कितनों ने तो शिमले के पहाड़ियों की भांति ऊनी कम्बल ओढ़ लिए हैं। इस प्राकृतिक-सुषमा के बीच सभी [illegible] आनन्द विभोर से हो गए हैं। कोई कैमरा लिए फोटो उतार रहा है, कोई ऐसा चित्र खींचने में संलग्न है। हममें से जिन्होंने आज पहली बार बरफ देखी है उनकी खुशी की सीमा नहीं। इस कड़-कड़ाती हुई ठन्ड में भी बर्फ के गोले बना कर एक दूसरे पर फेंक रहे हैं। सभी के हृदय उमंग और उल्लास से भरपूर हो गए हैं। मुझे अपने शिमले में बिताए हुए बचपन के दिन याद आ रहे हैं। वहां भी हम लोग सर्दी के दिनों में इसी प्रकार बरफ के गोलों से क्रीड़ा करते थे। प्रकृति का ऐसा निखरा हुआ रूप जीवन में आज पहली बार देखा है।

जेकोपानी की इस ऊंची चोटी पर हम चढ़ाई चढ़ कर हांफते हुए नहीं आए जैसे शिमले के जाकू या कामनादेवी पहुचते हुए हांफ जाते हैं। बिजली द्वारा चलते हुए एक डिब्बे ने हमें क्षण भर में ही हजारों फीट की इस ऊंचाई पर पहुँचा दिया।

सन्ध्या-कालीन समय हम यहां एक विश्राम-गृह देखने गए। मजदूरों और किसानों के मनोरंजनार्थ बने हुए इस विश्रामगृह में खेलने कूदने से लेकर चित्रकारी तक के साधन उपलब्ध हैं। अपनी दैनिक दिन-चर्या से ऊबा हुआ कोई भी मजदूर या किसान यहां आकर पन्द्रह दिन का विश्राम ले सकता है। यहां दो सौ व्यक्तियों के एक साथ रहने का पूर्ण प्रबन्ध है। बारी बारी से हर फैक्टरी के मजदूरों को यहां विश्राम के लिए भेजा जाता है जिससे कुछ दिनों के लिए वे एक निश्चिन्त जिन्दगी व्यतीत कर सकें। हमारे देश में ऐसी कल्पना करना कठिन है। मुट्ठी भर अन्न के लिए जी तोड़ परिश्रम करने वालों को भी विश्राम करने का अधिकार है।इसे महान उदार हृदय वाला भी नहीं सोच सकता। हमने अनुभव किया कि यहां शिक्षा की भांति स्वास्थ्य और आरोग्य-लाभ की व्यवस्था भी सर्व-व्यापी है। राजप्रसाद जैसे ये विश्राम-गृह और आरोग्य शालायें यहां सबके लिए सुलभ हैं। स्वतंत्रता के पूर्व यह स्थान एक रईस व्योपारी की निजी सम्पत्ति थी आज वही स्थान सैकड़ों व्यक्तियों के सुख और विश्राम का साधन बना हुआ दिख रहे हैं।

हम लोग पोलैन्ड के दूसरे पहाड़ क्रिनीका में आ पहुँचे हैं। ठंड यहां भी बहुत है पर यहांके निवासियों को हुम्मस नजर आ रही है। नाश्ते के बाद हम यहां का प्रसिद्ध सेनीटोरियम देखने गए जो पोलेन्ड भर में अपनी अचूक चिकित्सा के लिए प्रसिद्ध है।

छोटी सी ऊंची पहाड़ी पर स्थित सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों से घिरा हुआ यह विशाल सेनीटोरियम पोलैन्ड भर में प्रसिद्ध है। स्वतंत्रता से पूर्व फासिस्टों के राज्य में यह एक प्रसिद्ध शासक के रहने का स्थान था जिसके सुख का उपयोग केवल चन्द व्यक्ति ही करते थे। अब यह स्टेट की

ओर से खोला गया वह सुन्दर सेनीटोरियम है जहाँ सैकड़ों व्यक्ति दूर दूर से आकर अपनी पुरानी बीमारियों का मुफ्त और सफल इलाज कराते हैं। यह सेनीटोरियम इटैलियन मारबल के पत्थर का बना हुआ है। यहाँ हमने देखा कि रोगी को हर प्रकार की सुविधा देने का सुव्यवस्थित प्रबन्ध है। रोगी की चारपाई के समीप पाँच प्रकार की घंटियों के स्विच लगे हैं। हर घंटी पृथक पृथक आवश्यकता की सूचक है। अमुक वस्तु की आवश्यकता होने पर अमुक घंटी बजा देने से क्षण भर में ही उसकी पूर्ति हो जाती है। दीवार में टँगा हुआ हल्की सी रोशनी का टेबल लैम्प व टेलीफोन, फूलों के गुलदस्ते और दीवार पर टँगे हुये महान व्यक्तियों के चित्र और खूबसूरत पेंटिंग की तस्वीरें रोगी के मन को प्रसन्न रखने में सहयोग देती हैं। यहाँ इंजैक्शन और दवा के अतिरिक्त प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली "का भी सहारा लिया जाता है। जमीन से निकाला हुआ गन्धक का पानी और अनेक जाति के वृक्षों की हवा रोगी के रोग में बहुत सहायक होती हैं। इस सेनीटोरियम में अधिकतर मजदूर और किसान वर्ग के रोगी थे। इन मजदूरों को फैक्टरी की ओर से स्वास्थ्य लाभ के लिए भेजा जाता है और जब तक ये यहाँ रहते हैं इनके परिवार का पालन पोषण स्टेट की ओर से किया जाता है। खदान व लोहे के कारखाने के मजदूर और अनेक किसान यहाँ दो मास से चिकित्सा करा रहे थे। अब वे पूर्ण स्वस्थ होने की अवस्था पर हैं और घर जाने के सुन्दर सपने देख रहे हैं।

यहाँ से चार मील की दूरी पर स्थित हम एक दूसरा सेनीटोरियम देखने गए जो यहाँ के पोलिश युवक और युवतियों के द्वारा चलाया जाता है। चौदह वर्ष से लेकर बीस वर्ष तक के लड़के लड़कियाँ इसके समस्त उत्तरदायित्व को सम्भालते हैं। कुछ सुयोग्य और अनुभवी डाक्टर समय समय पर इनकी कठिनाइयाँ और समस्याओं का सामाधान करते हैं।

यहाँ हमने वह स्थान भी देखा जहाँ अनेक प्रकार के प्राकृतिक जलों का उपयोग पेट सम्बन्धी रोगों को दूर करने के लिए किया जाता है। इस पहाड़

पर भिन्न-भिन्न जलों के अनेक चश्मे हैं। अतः इन चश्मों के पानी को वैज्ञानिक ढंग से साफ करके, चिकित्सा के लिए प्रयोग में लाया जाता है। प्रकृति के द्वारा बिखरी हुई अमूल्य निधियों का भी ये लोग वास्तविक मूल्य आंकते हैं और उनका पूर्णतया लाभ उठाते हैं।

क्रिनांका और जकोपानी के बीच पोरोनिन नामक ऐतिहासिक स्थान पर भी हम कुछ घंटे रुके। यह स्थान अपना एक ऐतिहासिक महत्व रखता है। यहाँ पर इतिहास निर्माता स्वर्गीय लेनिन १६१२ से १६१४ तक अपनी पत्नी की बीमारी में आकर दो वर्ष रहे थे। उन्हें आवश्यक कार्यों से समय-समय पर क्रेको जाना पड़ता था। सेन्ट्रल कमेटी की मीटिंग प्रायः इसी स्थान पर लेनिन की अध्यक्षता में होती थी। यह वह समय था जब साम्राज्यवादी शक्तियाँ १६१४ वाले प्रथम महायुद्ध की तैयारी में मग्न थीं। यहाँ के व्यवस्थापक ने हमें बताया कि यहाँ लेनिन ने दो सौ चौदह लेख भिन्न भिन्न विषयों पर लिख कर अखबारों में भेजे थे। लेनिन की पुस्तकों का अनुवाद विश्व की एक सौ एक भाषाओं में हो चुका है। यहाँ का म्यूजियम अपना एक विशेष महत्व रखता है। इस म्यूजियम में हमने देखा कि लेनिन के जीवन का पूरा इतिहास चित्रों के द्वारा बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रदर्शित किया गया है। क्रमानुसार लेनिन के जीवन की प्रायः सभी घटनाओं के चित्र इस म्यूजियम के पांच कमरों में सजे हुए हैं। यहाँ लेनिन के पास चारों ओर से इतने पत्र आते थे कि पोस्टमास्टर की स्त्री ने कहा कि उसने अपने जीवन में आज तक किसी भी व्यक्ति की इतनी डाक नहीं देखी। १६२२ में लेनिन ने अन्तिम भाषण दिया। उस भाषण का रिकार्ड भी हमने इस स्थान पर सुना। म्यूजियम के बाहर संगमरमर की बनी हुई लेनिन की विशाल मूर्ति है जो मानो आने जाने वाले यात्रियों को विश्व-मित्रता का संदेश दे रही है। जिस मकान में यहाँ लेनिन रहता था उसे फिर से बनवाया गया है।

बीच मार्ग में एक ऊंची सुन्दर सी पहाड़ी पर स्थित हमने प्राकृतिक चिकित्सा का ऐसा अस्पताल देखा जहाँ अनेक प्रकार के मूल्यों की पत्तियों

से दवा बनाकर नाक, गले और फेफड़े की बीमारियों का इलाज किया जाता है। यहाँ जलवायु और विभिन्न जातियों के पेड़ पौधों की पत्तियों द्वारा रोग की चिकित्सा होती है। पोलैन्ड के चारों ओर से अनेक बीमारियों के रोगी स्वास्थ्य लाभ करने के लिए यहाँ आते हैं।

इन सुन्दर गिरी शृंगों पर कुछ दिन व्यतीत कर हम वारसा की ओर रवाना हो गये।

वारसा (पोलेन्ड)
७ अक्टूबर,

आजकल हम लोग पोलैन्ड की राजधानी वारसा में हैं। यहां सब कुछ उजड़ा हुआ सा दिखाई दे रहा है मानो किसी ने इस सुन्दर नगर को पूर्ण रूप से भस्म कर डाला हो। बाजार, सड़कें, मकान, इमारतें, गिरजाघर सभी के रूप कुरूप और बेढंगे हो गए हैं। किसी मकान की खिड़कियें टूटी हुई हैं तो किसी की छत आधी टूट कर नीचे झुक गई है। कहीं किसी गिरजाघर की विशाल मूर्त्तियाँ खंड खंड हुई मिट्टी के ढेरों में पड़ी दिखाई देती हैं। वारसा को पोलेन्ड की राजधानी होने के कारण गत महायुद्ध में सबसे अधिक तहस नहस किया गया था। वारसा देखने की रंगीन कल्पना लिए जब एक विदेशी सन् १९४५ में यहां आया तो इसके ध्वंस हुए रूप को देख चीत्कार कर उठा और सोचने लगा कि युद्ध के कारण क्या इतना परिवर्तन भी सम्भव है !

यहां हमने देखा कि शायद ही कोई ऐसा परिवार बचा हो जिसका एक भी प्राणी नाजियों का शिकार न हुआ हो। घर घर के व्यक्ति अपने प्रियजनों की याद कर आंसू बहाते हैं। एक पोलिश वृद्धा स्त्री से हमारी मुलाकात हुई। उसने हमें बताया कि उसका इकलौता जवान लड़का नाज़ियों द्वारा मार डाला गया। उसके पति को कन्सनट्रेशन कैम्प में रख कर गैस चैम्बर में जला दिया गया। अब उसकी केवल दो लड़कियां हैं जो फैक्टरी में काम करती हैं यह सब बताते हुए उस वृद्धा की आंखों में आंसू छल छला आए और वह युद्ध के प्रति घृणा के भाव प्रकट करने लगी। एक दूसरे सोलह साल के युवक ने हमें बताया कि उसके मां बाप को बहका कर कैम्प में ले जाया गया जहां उन्हें बहुत दुख देकर वहां बे-रहमी से मार डाला। उनका दोष केवल इतना था कि वे यहूदी जाति के थे। यहूदियों को नाजी अपना जानी दुश्मन समझते थे। हमने अनुभव

किया कि वारसा का हर परिवार अपने किसी न किसी संबंधी की मृत्यु से दुखी और पीड़ित है। पर नए वारसा का यह नवनिर्मित रूप भी बहुत ही सुन्दर तथा आकर्षित है। वीरान और उजाड़ हुआ वारसा फिर अपने उसी रूप में परिवर्तित किया जा रहा है। जहां पहले मिट्टी और ईंटों के ढेर लगे थे वहीं सुन्दर विशाल भवन खड़े कर दिए गए हैं। फूटे खंडहरों का स्थान बड़ी बड़ी ईमारतों ने ले लिया। हमने देखा कि एक ७वीं शताब्दी का बहुत ही विशाल चर्च गत महायुद्ध में बिल्कुल नष्ट कर डाला गया था। बड़ी बड़ी विशाल मूर्तियां और पुरानी चित्रकारी की तस्वीरें फूटे खंडहरों में परिवर्तित कर दी गयी थी। पर आज इसका उसी पुराने गोथिक स्टाइल पर पुनः निर्माण हो रहा है। अभी केवल इसका एक भाग ही बना है छः वर्ष की योजना में पूर्ण निर्माण की कल्पना को सत्य कर देने का निश्चय किया गया है।

हंगरी की भांति पोलिश व्यक्तियों में भी हमने भारतियों के प्रति विशेष आकर्षण की भावनायें देखी। एक दिन दोपहर के समय मैं अपनी दुभाषिया लड़की नीना के साथ खरीदारी के लिए बाजार जारही थी। रास्ते में वृद्धावस्था की एक पोलिश स्त्री अपने मकान की खिड़की से मुझे देखते ही लपकी हुई दौड़कर मेरे पास आई और मेरे गले से लिपट कर मुझे बारबार चूमती हुई भावावेश में आ आंसू बहाने लगी। बहुत अनुरोध करके वह मुझे अपने घर ले गई और बड़े प्यार से चाकलेट बिस्कुट आदि खिलाकर कैमरा लेकर फोटो उतारने लगी। भाषा न जानने के कारण मैं उसका आशय समझने में असमर्थ थी। बाद में नीना ने मुझे बताया कि वह स्त्री वर्षों से भारतीय स्त्रियों के चित्रों का संकलन करती रही है और उन्हें देखने के लिये बचपन से लालायित है पर अबतक उसकी यह लालसा पूरी नहीं हुई थी। आज मुझे देख मानों उसके जीवन की सबसे बड़ी इच्छा पूरी हो गई हो। उसने अपने हाथ का बनाया हुआ एक रूमाल भी मुझे स्मृति स्वरूप भेंट किया है। ऐसी ही अनेक घटनायें अन्य भारतियों के साथ भी हुईं। इससे जाहिर होता है कि यहां के लोगों में भारतीयों के प्रति स्वाभाविक श्रद्धा तथा स्नेह है।

पोलिश सरकार बच्चों की उन्नति के लिये विशेष रूप से सचेष्ट है। स्कूल, नर्सरी, किंडरगार्टन, सांस्कृतिकगृह, पुस्तकालय, खेल के मैदानों आदि में बच्चों का प्रस्फुटित तथा स्वस्थ रूप देखने को मिलता है। एक दिन दोपहर के समय हम सब भारतीय प्रतिनिधि 'चिल्ड्रन फ्रेन्ड सोसायटी' की ओर से चलाये गए बच्चों के पब्लिक स्कूल में गए। यह उनको दोपहर के खाने की छुट्टी का समय था। हमें देखते ही सैकड़ों बच्चों की भीड़ ने हम थोड़े से भारतियों को घेर लिया। कोई अपना बैज उतार कर हमारे कोट में लगाने लगा किसी ने फूलों का गुलदस्ता भेंट किया किसी ने अपनी लाल नेकटाई उतारकर हमारे गले में बाँध दी। कितनी ही देर तक हम इन बच्चों के साथ इनके सिखाए हुये अनेक खेल खेलते रहे। इस पब्लिक स्कूल का सारा उत्तरदायित्व यह सोसायटी ही संभालती है जिसे स्टेट की ओर से सहायता मिलती है। यह पब्लिक स्कूल पोलैन्ड के सब स्कूलों से अधिक विशाल और आधुनिक ढंग पर बना हुआ है। इसमें ग्यारह क्लासें होती हैं और यहाँ की शिक्षा के पश्चात् विद्यार्थी सीधा युनिवर्सिटी में जा सकता है, उसे सैकिण्डरी स्कूल में जाने की आवश्यकता नहीं। इस स्कूल में दो हजार बच्चे शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। दोपहर का खाना और सुबह का दूसरा नाश्ता बच्चों को यहाँ मुफ्त दिया जाता है। यहाँ इन बच्चों को अनेक विषयों की शिक्षा दी जाती है। इनकी तीव्र बुद्धि का अन्दाज तो हम तब लगा सके जब पाँचवी और छठी क्लास के छोटेछोटे बच्चों ने भारत के बारे में हमसे अनेक प्रश्न पूछे। भारत में शांति आन्दोलन, ट्रेड यूनियन आन्दोलन, भारतीय बच्चों का रहन सहन, शिक्षा प्रणाली, आदि के विषय में पूछे गए प्रश्न उन बच्चों की तीक्ष्ण बुद्धि का परिचायक थे। महात्मा गान्धी, जवाहर लाल नेहरू, रवीन्द्रनाथ टैगोर, आदि के नामों से भी ये छोटे छोटे बच्चे भली भांति परिचित थे। मेरे हाथ में गांधी डायरी पर गांधी जी का चित्र देखकर लगभग चौदह वर्ष की एक पोलिश बच्ची बहुत खुश हुई और उनके सत्य, अहिंसा हरिजन आन्दोलन आदि के बारे में अनेक प्रश्न पूछने लगी। दो साल लन्दन में

रहने के कारण उसे अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान था और उसने रोमा रोला की गांधी जी पर लिखी गई पुस्तक का भी अध्ययन किया था। किसी देश के ऐसे बच्चों को देख उस देश के सुनहरे भविष्य का अनुमान सुगमता से ही लगाया जा सकता है।

शान्ति प्रिय देशों में जो आज शांति का युद्ध अपनी पूर्ण शक्ति के साथ लड़ रहे हैं पोलेन्ड का स्थान सब से ऊंचा है। गत महायुद्ध में भीषण युद्ध का सेन्टर पोलेन्ड आज शांति का कैम्प बन गया है। युद्ध के कटु अनुभव जितने पोलेन्ड ने किए हैं अन्य किसी देश ने नहीं इसलिये आज वह विश्व भर के देशों में शांति अन्दोलन का अगुआ है।

सन १९४४-४५ पोलैन्ड के इतिहास में स्वर्ण काल है जब फासिज्म का अन्त करके गण-राज्य की स्थापना की गई थी। तब से आजतक पोलैन्ड शांति के कैम्प में कला, विज्ञान और साहित्य की उन्नति कर रहा है। शान्ति काल के इन चन्द वर्षों में ही पोलैन्ड की जनता ने अपने देश का नवनिर्माण करके अपनी लगन और शक्ति का परिचय दिया है। कला साहित्य और विज्ञान आदि सभी क्षेत्र में आश्चर्यजनक उन्नति की है। किसी देश की उन्नति उसका विकास शांति काल में ही सम्भव है इसका प्रत्यक्ष प्रमाण पोलैन्ड में देखने को मिला। जनता का यह पोलैन्ड आज अपनी आश्चर्य जनक उन्नति से यह प्रमाणित कर देना चाहता है कि पीपल्स डेमोक्रेसी में कोई भी देश उन्नति की ओर बढ़ सकता है।

आज हम विडीनिया (पोलैंड की बन्दरगाह) जा रहे हैं और वहां से बातोरी जहाज से भारत के लिए रवाना हो जायेंगे। नीना हमसे बिछुड़ते हुए बहुत दुखी हो रही है कह रही है कि भारत पहुँच कर पत्र जरूर भेजना भूल न जाना उसने तुम्हारे लिये पोलैन्ड के बैज दिये हैं और अपना प्यार भी तुम्हें भेज रही है। पोलैन्ड से विदा आज हमारी योरोप से विदा है यह सोच कर मन और भी उदास हो गया है पर तुम लोगों से मिलने की खुशी भी कम नहीं। दोनों ही भावनाएँ हृदय में उथल पुथल मचाये हैं।

बातोरी जहाज

२ नवम्बर १९५१

"पोलैंड से विदा लेते समय हम सभी के जी भर आए। सभी एक दूसरे से बिछुड़ जाने की मार्मिक भावनाओं को लिए दुःखी और उदास हो गए मानो अपने घनिष्ठ सगे सम्बन्धियों को छोड़ रहे हों। बार बार पोलिश युवक और युवतियाँ हमारे पास आ हमसे हाथ मिलाते हुये पत्र लिखने के वादे कर रहे थे और जीवन में हमें कभी न भूलने का विश्वास दिलाते थे। हमने उन्हें भारत आने का निमंत्रण दिया तो आंखों में आंसू भर मुस्कराते हुये कहने लगे 'कभी जरूर आयेंगे। भारत देखने के लिये हम लोग बहुत उत्सुक रहते हैं।' दो सप्ताह हमारे साथ रहने के कारण नीना हमसे बहुत स्नेह करने लगी थी और आज हमें विदा करते समय मानों उसका हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा था। जहाज पर खड़े-खड़े दोनों ओर से कितनी ही देर तक फूलों के गुच्छों का आदान प्रदान होता रहा और पोलिश इण्डिया मित्रता जिन्दाबाद से गिडेनिया का सारा बन्दरगाह गूंजने लगा। जहाज के ओझल होजाने तक मानो खड़े सभी पोलिश व्यक्ति आंखों में आंसू भरे रूमाल हिलाते हुए अपनी स्नेहमयी भावनाओं को व्यक्त करते रहे। हमने देखा कि नीना एक कोने में खड़ी अपने दोनों हाथों से आंखों को छिपाये जैसे सिसकियां भर रही हो। हमारे आवाज देने पर जब उसने हमारी ओर देखा तो उसकी भीगी आंखें सुर्ख हो रहीं थी।

देखते ही देखते जहाज ने हमें अथाह सागर में ला पहुँचाया और हमारी वही दिनचर्या प्रारम्भ हो गई। पोलिश व्यक्तियों की स्मृति और विदाई का वह अन्तिम दृश्य आज भी हमारे हृदय में एक टीस उत्पन्न कर देता है। नीना तो जैसे हमारी अभिन्न सखी की भांति हमसे सपनों में आकर बातें करती है।

गिडीनियां से करांची तक की भारत यात्रा "बातोरी" की यह दूसरी यात्रा है। यह पोलिश जहाज है और योरोप के लग्जुरी शिप के नाम से प्रसिद्ध है। यहां काम करने वाले युवक युवतियां स्वतन्त्र देश में उमड़ने वाले स्नेह और अपनत्व का परिचय देते हैं। सब लोग बहुत ही सहृदय तथा उदार हैं। यात्रियों को सब प्रकार की सुविधा देने का भरसक प्रयत्न करते हैं और सबसे ऐसे मिल जुल गए हैं मानों कबके के चिरपरचित हों।

लग्जुरी शिप होने के कारण यह जहाज अपनी पृथक विशेषतायें लिए है। ड्राइंग रूम में प्रवेश करते ही पोलैंड के अनेक देशों का सौन्दर्य साकार हो उठता है। इस कमरे के चारों ओर दीवारों पर पोलेन्ड के अनेक शहरों के सुन्दर चित्र बने हैं और प्रत्येक चित्र पर एक विशेष प्रकार की रोशनी शोभा दे रही है। कहीं "क्रेकों" नगर अनेक रंगों से सुसज्जित गिरजाघरों की प्राचीन कला का प्रतिनिधित्व कर रहा है तो कहीं तोरून नगर के रूप में पोलेन्ड की तेरहवीं शताब्दी की कला संस्कृति और सभ्यता मूर्त हो उठी है। पोलैन्ड के "जैकोपानी" की शैलमालाओं का प्राकृतिक सौन्दर्य भी इसी कमरे की दीवारों पर बिखरा हुआ दिखाई देता है। वारसा और पोजना का सौन्दर्य भी चित्रों द्वारा झलक रहा है। इन चित्रों से कोई भी यात्री पोलेन्ड के सौन्दर्य का अन्दाजा लगा सकता है। इसी कमरे के बाईं ओर लम्बी सी सुन्दर चमचमाती हुई मेज बनी हुई है जिस पर शैल्फ में रक्खे हुए लिफाफे और पत्र लिखने के कागज सुशोभित हैं। पास ही अनेक दवातें और कलम रखे हैं। यहां आकर कोई भी व्यक्ति किसी भी समय आराम और इतमिनान से बैठकर पत्र लिखने की आवश्यकता पूरी कर सकता है।

इसके अतिरिक्त यहां का स्विमिंग पूल भी अपनी एक विशेषता लिए है। यह अन्य जहाजों की अपेक्षा बहुत बड़ा और विशाल है। स्त्री और पुरुषों के नहाने का पृथक-पृथक समय निश्चित कर दिया जाता है। इसी तालाब में एक ओर किनारे में लम्बी रस्सी बंधी हुई है जिसे पकड़ कर तैरने का अभ्यास बहुत शीघ्र और सुगमता से किया जा सकता है। रस्सी

के अतिरिक्त चमड़े के पहिये भी इसी स्थान पर रखे रहते हैं जिन्हें पहन कर कितने ही स्त्री पुरुष तैरना सीखते हैं ।

यहां बच्चों के खेलने का कमरा भी मानव की पैनी सूझ-बूझ का परिचायक प्रतीत होता है । इस कमरे में अनेकों खिलौने, काठ के घोड़े, कल की गाड़ी, मोटर, आदि नियत स्थानों पर नियुक्त किए हुए हैं जिनमें बच्चों का अधिकांश समय यहीं व्यतीत होता है । इस कमरे में स्त्रियां अपने छोटे बच्चों को छोड़ कर निश्चिन्त और बे फिक्र होकर अपने अपने काम में संलग्न हो जाती हैं ।

इस जहाज की एक विशेषता यह भी रही कि १९५० में होने वाली पिछली "वारसा पीस कांग्रेस" में न्यूज़ीलैण्ड, आस्ट्रेलिया, इंग्लैण्ड और भारतीय प्रतिनिधियों को लिए बिना किसी बाधा के पोलैंड पहुँचाया गया था । "बर्लिन सम्मेलन में भी जब ब्रिटिश जहाज को बढ़ने से रोक दिया गया और अन्य जहाजों में आए हुए प्रतिनिधियों को आधे मार्ग में से ही लौट आना पड़ा उस समय भी यह जहाज अनेक भारतीय और अंग्रेज प्रतिनिधियों को लिए बर्लिन जा पहुँचा ।

आज भी इस जहाज में यात्रा करने वाले व्यक्ति भिन्न भिन्न विचारधाराओं को लिए हैं । बर्लिन के युवक सम्मेलन में जाने वाला पूरा भारतीय डेलीगेशन इसी जहाज से भारत लौट रहा है । इसी में ये पंजाबी सिक्ख भी यात्रा कर रहे हैं जिन्होंने अपने जीवन के अधिकांश वर्ष पोलैंड में व्यापार करते हुए बिताए और आज प्रसन्नचित्त अपनी मातृभूमि को लौट रहे हैं । इस जहाज में कुछ वे स्काउट भी यात्रा कर रहे हैं जो आस्ट्रिया में होने वाले विश्व स्काउट सम्मेलन में भारतीय स्काउट प्रतिनिधि बन कर गए थे अमेरिका और लन्दन से पढ़ाई समाप्त करके भारत लौटने वाले भारतीय विद्यार्थियों की संख्या भी इस जहाज में कम नहीं । प्रसिद्ध कलाकार अशोककुमार की पत्नि और उनका लड़का भी इसी जहाज से यात्रा कर रहे हैं । भारत में हंगेरियन एम्बेसी की स्थापना करने के लिए प्रथम हंगेरियन एम्बेसडर भी इसी जहाज़ में भारत जा रहे हैं । अतः इस जहाज में

पिचहत्तर प्रतिशत हिन्दुस्तानी व्यक्ति हैं । जहाज में प्रवेश करते ही इतने भारतीयों को देख अपनत्व का अनुभव होने लगा । इसके अतिरिक्त इस यात्रा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें लग-भग एक सौ अस्सी बच्चे हैं । गोदी के बच्चों से लेकर आठ वर्ष के बच्चे अपनी चिल्ल पों, खेल कूद और भाग दौड़ से सारे वातावरण को सजीव किए रहते हैं कहीं डेक पर वन टू थ्री कह कर दौड़ लगा रहे हैं तो कहीं पहिया पहन कर स्केटिंग पूल में तैरना सीख रहे हैं । कहीं अम्मा से झगड़ कर रूठ जाने का ढोंग रचते हुए दिखाई देते हैं तो डैडी के डांट देने पर रोने की आवाजों से सारा जहाज सिर पर उठा लेते हैं । अतः इन बच्चों की खुलखुलाहट ने जहाज के वातावरण को और भी आकर्षित बना दिया है ।

इस जहाज में तीन भारतीय रसोइयें हैं । भारतीय यात्रियों की संख्या अधिक होने के कारण यहां का भोजन भी भारतीय विशेषताओं को लिये है अतः वेजीटेरियन होने वाले हिन्दुस्तानियों को भोजन में उन असुविधाओं का सामना नहीं करना पड़ता जो अन्य जहाजों में । चावल, मसालेदार तरकारी, चटनी, सलाद प्याज आदि अनेक वस्तुयें भारतीयरुचि के अनुकूल प्राप्त होती हैं । यहां रात्रि के समय अंग्रेजी और पॉलिश फिल्मों के अतिरिक्त हिन्दुस्तानी फिल्म भी दिखाई जाती है । मुद्दत बाद हिन्दुस्तानी फिल्म देख कर भारतियों की प्रसन्नता की सीमा नहीं रही

इस प्रकार यहां का वातावरण क्षण भर के लिये यह भुला ही देता है कि हम जहाज की यात्रा कर रहे हैं या किसी बड़े कुटुम्ब में बैठे पारिवारिक सुख लूट रहे हैं

इस प्रकार हमारा जहाज एटलांटिक सागर, लाल सागर, स्वेज नहर और मेडिट्रेनियन सागर को पार करता हुआ अरब सागर में आ भारत की सरहद पर मंडराने लगा । आज दीपावली का पुण्य पर्व था । भारतीयों के हृदय में मानों आह्लाद का स्रोत फूट पड़ा है । वह दिन जहाज का वह मधुमय दिन था जो जीवन में एक अमर याद बन कर रह गया है ।

इस दिन रात्रि के समय अनेक प्रकार के सांस्कृतिक खेल उपस्थित किए गए। इन खेलों में सिक्ख, मुसलमान, गुजराती, बंगाली, पंजाबी आदि सभी प्रान्तों के व्यक्तियों ने भाग लिया। गुजराती लड़कियों का गरबा नाच, बच्चों के नृत्य, बंगाली गाने, हिन्दी कोरस और पंजाबी हीर (एक प्रकार का गाना) की मधुर ध्वनि से जहाज का कोना कोना गूंज रहा था। पोलिश अंग्रेज, इसाई, और अन्य दर्शकों ने भी हमारे साथ पूरा सहयोग दिया। रात के दूसरे पहर तक बड़ी जिज्ञासा और उत्सुकता से सब प्रोग्राम देखते रहे। यह प्रोग्राम दो दिन लगातार उपस्थित किया गया। एक दिन फर्स्ट क्लास के यात्रियों के लिए दूसरे दिन टूरिस्ट क्लास के लिए। सभी ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। फिर अन्त में पाकिस्तान के एक मुसलमान युवक ने हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की एकता के बारे में जोरदार भाषण दिया और सदा एकसाथ रहने का प्रण किया। इस प्रकार जनगणमन अधिनायक के अन्तिम गाने से इस सांस्कृतिक प्रोग्राम की समाप्ति हुई।

दीपावली का यह शुभ अवसर बड़ा ही प्रभावोत्पादक था। जीवन में ऐसी दीवाली कभी नहीं मनाई थी जैसी आज इस वार्तोरी जहाज में हमारी अन्य दीपावलियों में मुसलमान और ईसाई भाग नहीं लेते, अंग्रेज और पोलिश व्यक्तियों का सहयोग भी कहां प्राप्त होता है। ऐसे सुन्दर सांस्कृतिक प्रोग्राम भी उपस्थित नहीं किए जाते। अतः वार्तोरी जहाज में सब व्यक्तियों के द्वारा मनाई गई यह दीपावली जीवन में कभी नहीं भुलाई जा सकती। इस रात कोई नहीं सोया। प्रोग्राम समाप्त हो जाने के पश्चात भी सब व्यक्ति अपनी अपनी टोली बना कर जातीय गान गाते रहे। चारों ओर 'दीपावली अभिनन्दन' की आवाजें गूंज रही थी। रंग बिरंगी लाल पीली नीली हरी बिजली की रोशनियों से सारा जहाज जगमगा रहा था। दीपावली का यह पुण्य पर्व बड़ी धूम धाम से व्यतीत हुआ।

कल तीन तारीख को बम्बई पहुँच जाने की खुशी में सभी उछलकूद कर रहे हैं, हमारे हृदय तुम सब को देखने के लिए आज अधीर हो गए और यह एक दिन भी काटना दूभर दिखाई पड़ रहा है।